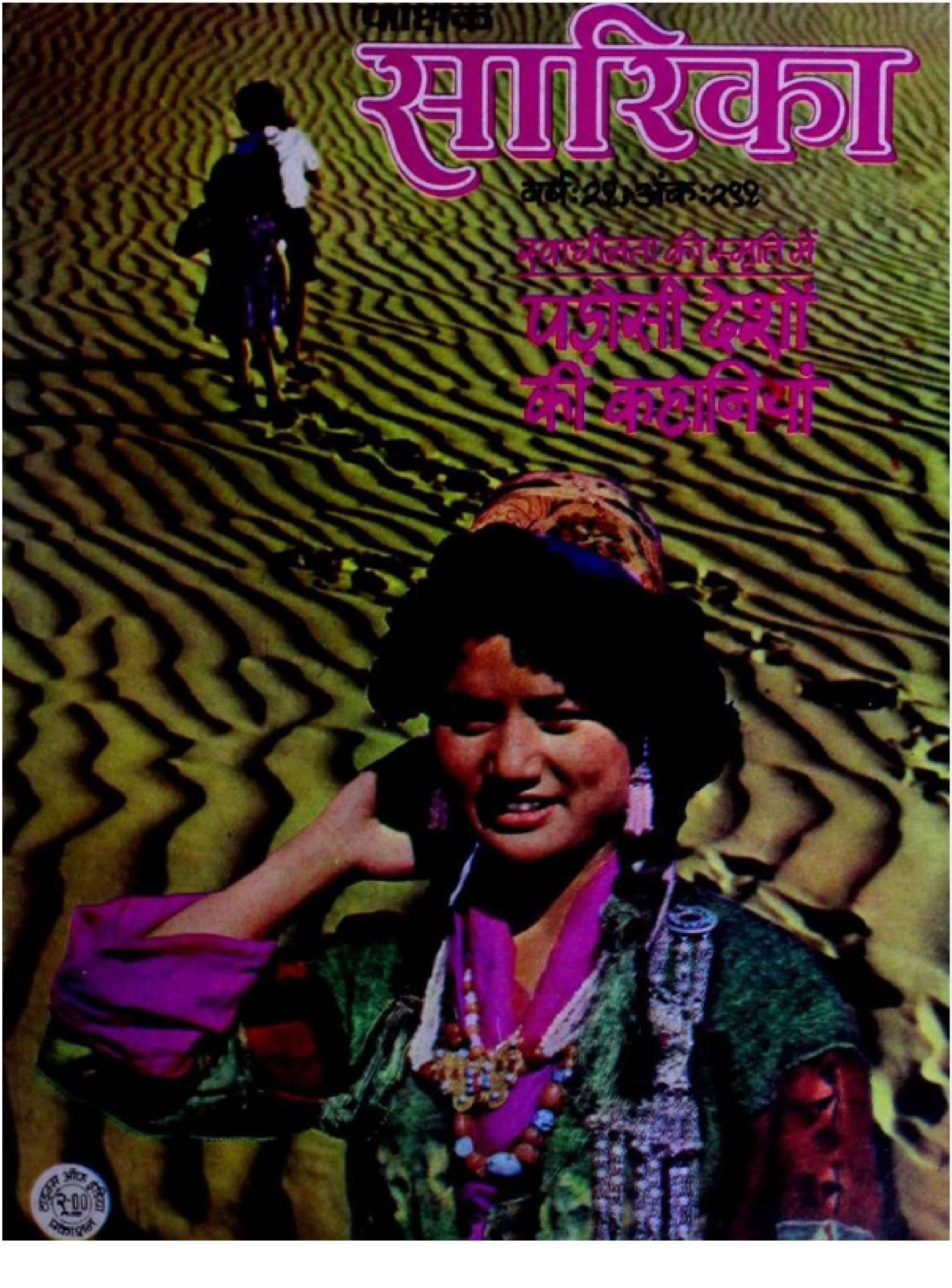
पाक्षिक
सारिका
वर्ष:२१ अंक:२९९
स्वाधीनता की स्मृति में
पड़ोसी देशों
की कहानियां
२.००

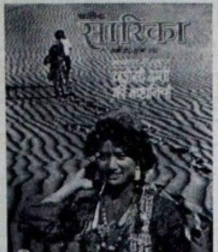

सारिका

स्वाधीनता की स्मृति में–

पड़ोसी देशों की कहानियां

संपादक :
कन्हैयालाल नंदन
मुख्य उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक :
रमेश बतरा, सुरेश उनियाल,
बलराम, अरुण वर्द्धन
सज्जा : रवि शर्मा

आवरण : विद्याव्रत, शिवाजी

कहानियां

11. जवानी के पांव (पाकिस्तान): **अब्दुल मजीद भट्टी**
16. सवाल (नेपाल) : **विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला**
26. ऐक अकेला दिल (बांग्ला देश): **मोइनुद्दीन**
29. बाढ़ : (श्रीलंका)
33. आपातकालीन सूचना (चीन): **हुआंग फी**
36. मेरी सहेली (इंडोनेशिया): **प्रमुद्य अनंत तूर**
52. सच का चेहरा (फिलिपींस): **ओ. अलचंद्र दीमालांता**
63. बर्मा का अनोखा भविष्यवक्ता (बर्मा): **सॉ तुन**
66. वर्षा की रानी (थाइलैंड): **प्रतूम्रथ जेंग**

विशिष्ट रचनाएं

45. कुंवर की दुलहिन (दूसरी किस्त): **रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'**
57. घर की चिट्ठी : **रामदरश मिश्र**

धारावाही उपन्यास

20. इतिवृत्त (दूसरी किस्त): **जगदंबा प्रसाद दीक्षित**

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २१; अंक: २९१;
१६ से ३१ अगस्त, १९८१

सफरनामा

41. **सफरनामा–जापान** (पहली किस्त) : **मुस्तबा हुसैन**

साक्षात्कार

9. **कड़वी बात मीठे लफ्जों में नहीं कही जा सकती!–पाकिस्तानी शायरा फहमीदा रियाज से बातचीत**

लघु रचनाएं

12. जनाजे के साथ-साथ : **अफजल अहमद शाह**
19. लोभी आदमी
23. दो पड़ोसी
30. सिगरेट का धुंआ
38. खरगोश की बाछें
48. अली बली
65. विधाता ने पूछा
7. **पाठकों का पन्ना**
18. **गुस्ताखियां : प्रकाश पंडित**
39. **तस्वीर बोलती है : माखनचाब**
61. **उनने कहा था**
69. **गपशप**
70. **पखवारे की पुस्तक**
73. **हलचल**

उदारता से दान दें

अनेक राज्यों में विनाशकारी बाढ़ तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं में बहुत से लोग मारे गये हैं, संपत्ति की अपार क्षति हुई है तथा लाखों लोग मुसीबत में फंसे हुए हैं.

बैनेट कोलमैन एंड कंपनी ने अपनी परंपरा के अनुसार इस प्राकृतिक आपदा के शिकार लोगों को राहत पहुंचाने के लिए पच्चीस हजार रुपये 'टाइम्स आफ इंडिया रिलीफ फंड' में देने का फैसला किया है. हमारे कृपालु पाठक विगत में ऐसी आपदाओं के शिकार लोगों की सहायता के लिए उदारता से अंशदान देते रहे हैं. सुहृदय पाठकों से हमारा फिर विनीत आग्रह है कि इस कोष में मुक्तहस्त से अंशदान दें. इस कोष में दी गयी राशि पर, आयकर कानून 1961 की धारा 80-जी के अंतर्गत, आयकर में राहत मिलेगी. पच्चीस रुपये तथा इससे अधिक की राशि देने वालों की सूची 'टाइम्स आफ इंडिया' तथा 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित की जायेगी. राशि 'द टाइम्स आफ इंडिया रिलीफ फंड' के नाम चेक, ड्राफ्ट अथवा नकद रूप में इस पत्र के बंबई, दिल्ली, अहमदाबाद, कलकत्ता, मद्रास तथा पुणे स्थित किसी भी कार्यालय में भेजी जा सकती है.

शाश्वत मूल्यों के दायरे और पड़ोसी देश

सारिका ने अपने विशेषांकों की समृद्ध परंपरा में पहले भी विश्व साहित्य के ऐसे अंक दिये हैं, जो विश्व की सामूहिक मानसिकता को सहज ढंग से उजागर करते रहे हैं. लेकिन कई बार ऐसा लगा कि इस विश्वजनीन मानसिकता के चक्कर में हमारे पड़ोसी देश काफी हद तक उपेक्षित-से होते चले गये. हम पिछले लगभग एक वर्ष से अपने पड़ोसी देशों की रचनाधर्मिता पर बराबर नजर रखे हुए थे—और चाहते थे कि हमारे पाठक भी उस रचनाधर्मी मानसिकता से जुड़ जायें. इसी विचार के तहत हमने इस विशेषांक का आयोजन किया है.

इस अंक की कहानियां जिन शाश्वत और सामयिक मूल्यों को लेकर चलती हैं, वे सिर्फ उन्हीं देशों तक सीमित हों, ऐसा नहीं है. वे मूल्य हमारे भी हो सकते हैं और दूर दराज के देशों के भी—विशेष रूप से तीसरी दुनिया के देशों के. हर विकासशील देश के आम आदमी के हालात कमोबेश एक से ही हैं. उनका प्यार, उनकी घृणा, उनका आक्रोश, उनकी पीड़ा और उनकी संघर्ष चेतना का प्रारूप और कारण लगभग एकसा है. इसी एकरूपता को गंभीरता से उजागर करने के लिए हमने कहानियों का चयन करते समय विषयों की विविधता पर विशेष ध्यान दिया है. अगर बर्मा और थाईलैंड की रचनाएं 'अंध विश्वासों' पर प्रहार करती हैं, तो नेपाल और इंडोनेशिया की कहानियां 'बाल विवाह' पर. अगर श्रीलंका और चीन की कहानियां 'प्राकृतिक आपदाओं' से जूझने की सूझ-बूझ और हिम्मत देती हैं तो पाकिस्तान, बांग्लादेश और फिलिपींस की कहानियां 'प्रेम के बहुआयामी धरातलों' को उजागर करती हैं. नाम, स्थान और भाषा के दायरे शाश्वत मूल्यों को सीमित नहीं करते, बल्कि उनकी सार्वभौमिकता को बरकरार रखते हुए साथ-साथ चलते हैं. इन्हीं मूल्यों के सहारे हम अलग-अलग देशों, भाषाओं और नामों अथवा संप्रदायों में बंट कर भी एक दूसरे से जुड़े रहते हैं. इसी जुड़े रहने को हम विश्वजनीन आदमी की सबसे बड़ी विशेषता और उपलब्धि मानते हैं.

जिंदगी चाहे कैसी भी हो, कहीं की भी हो, जीने के लिए होती है, लेकिन क्या हम उसे सही ढंग से जी पाते हैं? क्या हम हर वक्त और हर कदम पर समझौता करने के लिए मजबूर नहीं कर दिये जाते? क्या हमारा समूचा वजूद समस्याओं के मकड़जाल में और भी नहीं उलझता जाता? इन सवालों के जवाब और इन मकड़जालों से निकल पाने की जद्दोजहद अगर पाठकों को इन कहानियों में मिल जाये, तो हम अपना श्रम सार्थक मानेंगे. बहरहाल भारत के मित्र और पड़ोसी देशों की यकसां मानसिकता के नाम समर्पित यह अंक आपके हाथों में देते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है. और भी प्रसन्नता होगी यदि हमें इस पर अपने पाठकों की व्यापक प्रतिक्रियाएं मिलेंगी.

—संपादक

पाठकों का पन्ना

प्रश्न उछालती पीढ़ियों की हिम्मत

अंक : 286, में प्रकाशित महेंद्र मित्तल की कहानी 'गुलटउवा' मर्मोद्वेलक लगी. किंतु लाल पगड़ी के प्रेत की धमकी—"दो मिनट में तुमने जवाब नहीं दिया, तो तुम्हारे सिर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जायेंगे—"लादी हुई-सी और अप्रासंगिक लगी. कहानी का विकास अत्यंत स्वाभाविक तौर पर हुआ है, किंतु सामंतशाही युग का उक्त वाक्य खंड, इस प्रजातंत्र के युग में लिखी गयी कहानी के सिर पर 'गुजरे जमाने के फटे चिथड़ों की पगड़ी'-सा लगा.

अलबत्ता गुलटउवा के शव-बैताल का प्रश्न : "बोलो, जवाब दो छोटे बाबू, तुमने मुझे पहचाना क्यों नहीं?"—अस्तित्व परीक्षण के इस काल में आदमी की अस्मिता के सम्मुख ज्वलंत प्रश्न है.

▣ जयप्रकाश साव, राजनांदगांव

संस्कृति बचाओ

सारिका का अंक : 286, वर्ष : 21—7 जून की शाम मिला. 'विसंस्कृतिकरण की संस्कृति' एवं श्री अभिमन्यु अनत से मुद्गल जी की बातचीत पढ़ी. दोनों ही प्रबंधों ने इतना प्रभावित किया—दिमाग में विचारों का ऐसा अंधड़-सा छाया कि उस रात सो भी न सका. इतनी जबरदस्त एवं समसामयिक बात है यह कि मुझे लगा, हर संवेदनशील प्रबुद्ध व्यक्ति को इस सोच से जुड़ना चाहिए. न सिर्फ जुड़ना बल्कि अपने-अपने दायरे में जहां संभव हो, अपनी धरती की अस्मिता एवं पहचान खोती जा रही संस्कृति को बचाये रखने की चेष्टा चलानी है; जिससे उपनिवेशवादियों-साम्राज्यवादियों का षड्यंत्र निष्फल जा सके.

▣ इंदु राजगढ़िया, पुरुलिया (प. बं)

वैचारिक नपुंसकता

अभी-अभी 'मेरी स्त्रियां' (अंक-287) पढ़ा. वर्तमान की मजबूरियों को प्रतीकों के माध्यम से (मसलन तिराहे का सांड) ढाल बना कर व्यवस्था पर लेखक ने करारा प्रहार किया है, जो कि पाठक के मस्तिष्क में पैठ कर कुछ कर गुजरने के आक्रोश को जन्म देता है. खेद इस बात का है कि यह आक्रोश सीमित, साधनविहीन, छितरा हुआ सा है.

वैचारिक नपुंसकता को रोकने में 'सारिका' भी महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है.

▣ प्रमोद वरणगांवकर, रतलाम (म. प्र.)

मजबूत शिकंजा

16 जून की 'सारिका' में श्री मणि मधुकर का उपन्यास 'मेरी स्त्रियां' पढ़ा. यह उपन्यास हर दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है. वस्तुतः आज हमारे देश में सर्वत्र शक्ति और संपन्नता का ही बोलबाला है. प्रभावशाली लोग सर्वहारा वर्ग पर हावी हैं. गरीब, असहाय, निरीह, शोषित, पीड़ित और दुःखी लोग और भी कमजोर होते जा रहे हैं. शोषक तत्वों का शिकंजा क्रमशः मजबूत हो रहा है. बड़ी ही भयावह स्थिति है देश की. लेखक ने इन सब बातों को सच्चाई के साथ उजागर किया है. इस कृति के लिए संपादक और श्री मणि मधुकर बधाई-पात्र हैं.

▣ दुर्गेश, चुरू

परदे के पीछे

एक लेखक के जज्बात का दायरा कितना गहरा होता है, जहां पहुंचकर वह किसी भी तरह की सामाजिक गतिविधि को भलीभांति देख सकता है.

'मेरी स्त्रियां' (उपन्यास), 'सारिका' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में प्रकाशित होने के बाद, मणि मधुकर की निरंकुश लेखनी ने समाज को खुलेआम ये बताया है कि जो कुछ भी परदे के पीछे होता है, वह कितना खतरनाक है? आगामी पीढ़ी के लिए वह एक संक्रामक बीमारी से कम नहीं है!

▣ आर. एस. 'मस्ताना' बंबई.

सवाल मंजिल का है

जरिया-नजरिया में 'कड़ी धूप और कांच के शामियाने' शीर्षक के अंतर्गत नंदनजी ने युवा-वर्ग की कमजोरियों को आगे निकाल कर रखा और निदान देने का उत्साह दिखाया है. श्री जे कृष्णमूर्ति के विचार व श्री कुमार विकल की कविता युवकों के लिए सही शब्द हैं. किंतु नंदनजी ने एक पक्ष को शायद जानबूझ कर अनदेखा किया है. उनका कहना है कि युवा-वर्ग आक्रोश दिखाता है, चुनौतियों को स्वीकार करने की जगह निराश होकर युद्ध की तैयारियां नहीं करता जूझने के लिए. किन्तु क्या जो चुनौतियों को स्वीकार करते हैं या जूझते ही रहे हैं उन्हें, चाहे कमी सहित ही सही, मंजिल मिली?

▣ देविंदर बिमरा, पटियाला-147001

समस्या उलझाने का कुचक्र

पिछले 12-13 वर्षों से एक अलग प्रकार का 'रस' रचनाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है. यह है रोमानियत का रस. छिछले प्रेम-प्रसंगों में रोमानियत का आना स्वाभाविक है जो अक्सर गुलशन नंदा, समीर या इसी प्रकार के अन्य तथाकथित 'हिंदी साहित्यकारों' में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है परंतु जब यह रोमानी-वाद किसी मानवीय समस्या से जुड़ जाये तब सही क्रांति को व उसके प्रयासों को तोड़ने का षड्यंत्र और समस्या को सही ढंग से सुलझाने की अपेक्षा उसे और अधिक उलझाने का कुचक्र ही कहा जायेगा.

'मेरी स्त्रियां' उपन्यास में मधुकर जी ने ठीक यही किया है. मधुकर जी

विशेष सूचना

श्री मणि मधुकर का उपन्यास 'मेरी स्त्रियां' शीघ्र ही पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रहा है. इसके प्रकाशक का पता है—

सरस्वती विहार,
जी.टी. रोड, शाहदरा,
दिल्ली-110032.

[illegible] अपनी स्त्रियों में से एक स्त्री नीलम्मा (जो एक प्रकार से काल्पनिक ही है) और पुरुषों में से वैंकटय्या, गनेशी, चीनू या खुद लेखक के प्रति पूरी सहानुभूति है. बाकी पात्रों के साथ उनकी खीज, हताशा, क्रोध, और एक प्रकार से 'अनैतिकता' का भाव जुड़ा हुआ है. परंतु खेद इस बात का है कि यह सहानुभूति, खीज, हताशा, क्रोध, या 'अनैतिकता' का भाव इतने रोमानी ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि ये भाव अपना सही पैनापन खोकर भोथरे हो जाते हैं.

मेरे हिसाब से इस लघु उपन्यास का कथानक तीन आयामों में चलता है. (1) बिगड़ी हुई स्त्रियों की कहानी. (अप्रत्यक्ष रूप से उनके चरित्र को उभारना) (2) क्रांति कर रही एक 'आदर्श' नारी की कहानी (3) इन नारी पात्रों के बीच दो प्रकार के पुरुष वर्गों की कहानी. इसमें दो प्रकार के पुरुष हैं:—(अ) लेखक, गनेशी, चीनू व बाबा (पोस्टमैन) तथा सबसे ऊपर वैंकटय्या जैसे परिस्थिति के मारे सहानुभूति प्राप्त करने वाले पात्र व एक आदर्श तथा क्रांतिकारी पात्र (ब) मीरचंद नवाब, मदनलाल जैसे क्रमशः समलैंगिक एय्याश व लफंगे सियार पात्र. पूरे उपन्यास (लघु) को पढ़ जाइए कहीं भी लघु उपन्यासकार महोदय, किसी भी पात्र की समस्या को गंभीरता से नहीं पकड़ते. जबकि 'बुरे' पात्र वास्तव में उस सहानुभूति के पात्र हैं जो एक रोमानी आदर्शवादी ख्यालों पर आधारित न होकर एक गंभीर व परिपक्व समझ पर आधारित होती है. यह सहानुभूति उस विश्लेषण के मंथन के बाद उभरती है, जहां हम मानवीय (बुरे) व्यवहारों को कई प्रकार की सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनीतिक व मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर समझने के बाद चिंतन के रूप में अपनाते हैं. समलैंगिक संबंध रखने वाले पुरुष को, किसी व्यापारी की औरत को किसी पहाड़ी छोकरे या अन्य पुरुषों के साथ सोते देख कर, उन्हें कुत्ता या कुतिया कह देने से, उन्हें मानवीय गरिमा तक न पहुंच पाने की गाली देने का काम पूरा नहीं हो जाता. वास्तव में यही गालीगलौज रचनाकार की छिछली व अपरिपक्व मानसिकता को उभारती है व मूल समस्या के समाधान को हल्का कर उसे एक रोमानी रूप दे देती है. ठीक यही बात नीरा, जीनत, नवाब साहब, मदनलाल के साथ भी है. क्यों नहीं उपन्यासकार (लघु) उन जड़ों पर पूरी ईमानदारी से संतुलित क्रोध के साथ कुठाराघात कर पाया है, जो इस प्रकार के पात्रों को जन्माती है? इन जड़ों की पहचान घृणा, क्रांति, आदर्श व रचना की रोमानी समझ से नहीं हो सकती.

फिर 'नदी के द्वीप' के समय के उपन्यासों की तरह बीच-बीच में व अंत में कुछ कर गुजरने वाले अंदाज में कविताएं भी हैं. एक अच्छा खासा रोमानी बौद्धिक नजारा देखने को मिल जाता है.

फिल्म बन जाने वाले ख्याल को लेकर लिखे गये उपन्यास / लघु उपन्यास / कहानियां अगर केवल उसी विचार को लेकर पूरी ईमानदारी से रोमांटिक चीज लिखें तो हमें कोई एतराज नहीं है.

▣ किशोर वासवानी, पुणे (महाराष्ट्र)

सारिका; अंक : २८६

तस्वीर बोलती है

विजेताओं को बधाई

प्रथम पुरस्कार : ३० रुपये

जाने कितनी यादें उभरीं,
झील के गहरे पानी से,
हमने तन्हा बैठे-बैठे,
पत्थर एक उछाला था.

सुदेश वाघमारे, फारेस्ट रेंजर,
पो: मगरधा, त: हरदा
(होशंगाबाद) म. प्र.

द्वितीय पुरस्कार : २० रुपये

पानी एक जिस्म है
जिस्म अश्लील नहीं—ज्यामिति वह
एक धुंआ,
धुंध और धुआं
एक ढलता हुआ रहस्य
एक डूबता हुआ मौन! —जल! !

हरिभक्त, 66-67, वल्लभ नगर, सिंधी कालोनी, पंजवाणी भवन, गुमानपुरा, कोटा (राजस्थान)

कुछ प्रशंसनीय शीर्षक

● सुधीर निगम, बुलंदशहर
कुटिल वासना की तीन स्थितियां
जानते हैं आप?
नहीं तो लीजिए, गिनिए—
आमंत्रण, समर्पण, पश्चाताप!

● देव ऋषि लौवंशी, इटारसी **यार्ड**
गांव की प्रीत-सी जिंदगी,
ब्याह की रीत-सी जिंदगी,
याद है बालपन की मुझे,
प्यार की जीत-सी जिंदगी.
खोजती है पलटकर किसे,
नग्न भयभीत-सी जिंदगी.

● वीरेंद्र प्रकाश शर्मा, मंसूरपुर
छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति की भी माया.
बाले तेरे बाल जाल में,
कैसे उलझा दूं लोचन!
(सुमित्रानंदन पंत)

साक्षात्कार

पाकिस्तान की प्रसिद्ध शायरा फहमीदा रियाज के साथ प्रदीप पंकज की बातचीत

"कड़वी बात मीठे लफ्जों में नहीं कही जा सकती!"

◘ फहमीदा रियाज

कोई भी सत्ता जब अपने आपको नैतिक रूप से कमजोर पाती है तो सबसे पहले लेखकों और पत्रकारों की जबान बंद करने की कोशिश करती है. पाकिस्तान में पिछले करीब तीन दशकों से अखबारों पर सेंसर लगा है और आज यह सेंसर अपने कठोरतम रूप में है. हर स्वाभिमानी लेखक और पत्र-पत्रिका को वहां शासन के दमन का शिकार होना पड़ा. वहां की प्रख्यात शायरा फहमीदा रियाज और उनकी पत्रिका 'आवाज' पर पंद्रह मुकद्दमे चल रहे हैं. आजकल फहमीदाजी भारत में ही हैं. प्रस्तुत है उनके साथ यह बातचीत.

आप भारत आती रही हैं. आपकी पहली प्रतिक्रिया भारत के बारे में क्या थी?

मैंने अपने देश की हर छोटे-बड़े दुख-सुख पर यहां की जनता में प्रतिक्रिया और संवेदना देखी. इसने मुझे चकरा-सा दिया.

भारत और पाकिस्तान के बीच जो वर्तमान संबंध हैं, उन पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है? वे किस दिशा में जा रहे हैं?

सरकारी संबंधों पर कोई टिप्पणी मैं नहीं करना चाहती, पर जनता के संबंध भीतर से एक-दूसरे के प्रति प्यार-भरे हैं. लोगों के बीच और रचनाकारों के बीच एक दूसरे को समझने की कोशिश बरकरार है.

अपनी मासिक पत्रिका 'आवाज' के माध्यम से इस संबंध में अपने क्या ठोस काम किये?

कई हिंदुस्तानी पत्रकारों और रचनाकारों की रचनाओं का उर्दू अनुवाद हम छापते रहे हैं. कोशिश यह रहती थी कि पूरी स्थिति उभरकर सामने आये और वैचारिक आदान-प्रदान हो. अभी पिछले दिनों 'टाइम्स ऑव इंडिया' का एक संपादकीय और 'सूर्या' में प्रकाशित श्रीमती गांधी का इंटरव्यू हमने छापा था.

पाकिस्तान की लघु पत्रिकाओं की स्थिति क्या है और उन्हें कितनी आजादी है?

पाकिस्तान में इस वक्त बदतरीन सेंसर लागू है. किसी भी आजादी का सवाल ही पैदा नहीं होता, पर लोग लिखने के नये-नये ढंग निकाल लेते हैं और एक दूसरे से कम्युनिकेट करते हैं. सरकार की तरफ से मेरे रिसाले 'आवाज' पर पंद्रह मुकद्दमे चल रहे हैं.

अन्य पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति क्या है?

मुझे खुशी है कि पाकिस्तान के पत्रकारों ने अपना संघर्ष दिखाया. जिस हद तक किसी भी देश के पत्रकार अपनी पत्र-पत्रिकाओं के लिए लड़ते रहे सकते हैं, उससे कहीं ज्यादा हमारे पत्रकार लड़ रहे हैं. मैं भी पत्रकारों की उस बिरादरी में शामिल रही हूं. इसलिए मुझे अच्छा लगा.

और लेखक?

लेखक भी लड़ रहे हैं और संघर्ष झेल रहे हैं.

क्या युवा लेखकों की इस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं है?

है! पिछले पंद्रह बरसों में वहां के युवा लेखक, खासकर सिंधी, बलूची और पंजाबी लेखन में बहुत तेजी और आक्रोश आया है. वे तमाम चीजों को पूरी गंभीरता और संजीदगी से लेते हैं. और पिछले दो-तीन वर्षों से उर्दू साहित्य भी राष्ट्रीय भावनाओं को प्रतिबिंबित करने लगा है.

आपकी नज्मों का मूल 'एप्रोच' क्या है?

जिस माहौल में रहती हूं, उसे ज्यादा बेहतर और अच्छा देखना चाहती हूं. . . सन 65–66 में मैंने लिखना शुरू किया. उस वक्त तक उर्दू में औरतें कम ही लिखती थीं. शुरू में लोगों ने अच्छी प्रतिक्रिया दी. तभी पहली किताब 'पत्थर की जुबान' छपी.

उसके बाद?

सात बरस मैं लंदन रही. वहां मैंने अधिकांश 'प्रोटेस्ट' नज्में लिखीं. संभवतः जरूरत से ज्यादा तेज और 'बोल्ड' लहजा था उनका.

ऐसा क्यों?

मेरे खयाल में कड़वी बात मीठे लफ्जों में नहीं कही जा सकती. ये तमाम नज्में 'बदन दरीदा' किताब में छपीं और बहुत विवादास्पद बनीं. लोग चौंके अचंभा हुआ उन्हें. और लोगों ने उसका विरोध किया.

आपको कैसा लगा?

(हंसकर) मुझे लगता रहा कि मुझे मर जाना चाहिए.

(वहीं बैठे सैयद महम्मद मेंहदी ने बताया कि इस संकलन के बाद ही हिंदुस्तान में लोगों ने फहमीदाजी को शायर के रूप में स्वीकारा.)

लेकिन आपके तीसरे संकलन 'धूप' में तो ...

इसमें मेरा 'एप्रोच' बदल गया. मैं अधिक विस्तारवादी हुई, पर सन् 75 के आसपास मैं जो कुछ लिख रही थी, उसे कोई भी पाकिस्तानी रिसाला छापने के लिए तैयार नहीं था. उर्दू के रिसालों में जो कुछ छप रहा था, उसके बीच मैं छपना नहीं चाहती थी. सबसे पहले 'धूप' की नज्में 'सिंधी' में अनूदित होकर छपीं.

उर्दू में किसलिए नहीं?

मैं बराबर सोचती रही कि उर्दू का रस सूख गया है और वह भाषा मैं इस्तेमाल नहीं कर सकती थी, जो सरकारी अखबार करते थे. यही कारण है कि 'धूप' का पाकिस्तान की किसी पत्र-पत्रिका में अभी तक एक 'रिव्यू' भी नहीं छपा.

भाषा के इस्तेमाल में आप काफी उदारवादी नजर आती हैं.

भाषा को मैं 'कम्युनिकेशन' का साधन मानती हूं. किसी दूसरी जुबान का कोई शब्द जो मेरे रचनात्मक तेवर को ज्यादा साफ कर सके, मैं लेना चाहूंगी. मेरी कई रचनाओं में आपको हिंदी के काफी शब्द मिल जायेंगे.

लोगों की क्या प्रतिक्रिया होती है ऐसी भाषा पर?

काफी लोगों ने विरोध किया. धीरे-धीरे स्वीकारने लगे, पर जनता याने पाठकों ने बहुत सहारा दिया.

भारत के उर्दू लेखन के बारे में आपकी क्या राय है?

मायूसी है. बहुत दुख है. कुछ को छोड़कर बाकियों के प्रति निराशा है. यह भी सुना है कि यहां उर्दू पर जुल्म हुआ.

यहां के उर्दू आलोचक?

हवाई बातें करते हैं. यहां के आलोचकों में मैंने 'तरक्की पसंदगी' की वो लहर नहीं देखी, जो होनी चाहिए, लेकिन कुछ अच्छे काम भी हुए हैं. मसलन प्रोफेसर मुहम्मद हसन का रिसाला 'असरी अदब' बुलंद पाया तहरीरें पेश करता है, जिनमें से कई मैंने 'आवाज' में भी छापी हैं.

यहां के कौन-से लेखक आप लोग पढ़ते हैं?

बेदी, अश्क, कृश्न चंदर, इस्मत चुगताई, अमृता प्रीतम, रामलाल वगैरह. □

रांझे ने कहा

◘ फहमीदा रियाज

तू तो जानती है ओर हीर मेरी
क्यूं हमने छोड़ी गली तेरी
क्यूं कान फड़वाये, क्यूं जोग लिया
क्यूं घर संसार से आंख फिरी.

तेरी चाह से दिल को उठा न सके
तेरे कूचे से कदम उठाये हमने
दिलदार ये कीमत प्यार की थी
वफा की है तो मोल चुकाये हमने.

दामन झाड़ के देख ये धूल भरा
जर जोर नहीं, टके चंद नहीं
सब तार इसमें तेरे प्यार के हैं
कोई मखमल का पैबंद नहीं.

खूने दिल पिलाकर पाल लिये
तेरे हिज्र फिराक के नाग काले
अब जोग की राहें अनजानी
और अपने पैरों के छाले.

कोई हंस के तके, कोई फब्ती कसे.
कोई रहम करे पूछे हाल तेरा
बेगाने मिले या दोस्त यहां
पर महरम सिर्फ खयाल तेरा.

परदेश में आशिक ढूंढ रहे
फिर मिलने की तदबीर कोई
बिछड़े यार एक बार मिला दे जो
ऐसे मुर्शिद सैयद पीर कोई.

पाकिस्तानी अखबारों में अपने बारे में खबरें देखकर फहमीदा रियाज ने यह नज्म लिखी है और अभी तक अप्रकाशित है. इसके छंद 'हीर' की तर्ज पर हैं.

पाकिस्तानी कहानी

दो पांव आदमी के होते हैं, जिन पर चलकर वह कहीं भी जा सकता है, अपनी मर्जी से. उनके अलावा जवानी के भी पांव होते हैं, जिन पर कोई बंधन नहीं, कोई नियंत्रण नहीं. ये जब सही रास्ते पर चलते हैं तो पवित्र होते हैं, पर जब यह गलत रास्ते पर जायें तो . . . ?
जवाब दे रही है पाकिस्तानी कथाजगत के एक सशक्त हस्ताक्षर अब्दुल मजीद भट्टी की यह कहानी. भट्टी मुख्यतः पंजाबी में लिखते हैं और इनका एक कहानी संग्रह 'दिल दिया बारियां' बहुत चर्चित हुआ है.

जवानी के पांव

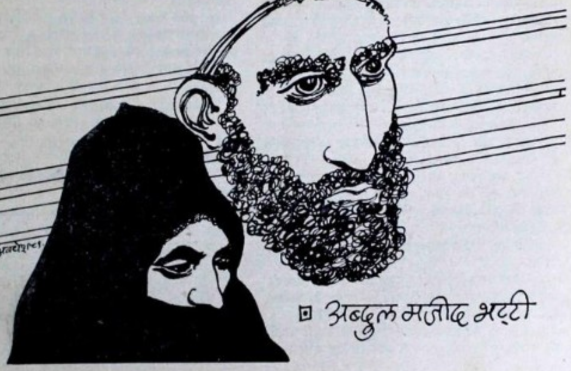

▣ अब्दुल मजीद भट्टी

नूरां गांव की बहू और बक्क गांव की बेटी थी. दोनों चुस्त-चालाक और मुंह-चित लगती थीं. और दोनों का रंग भी एक-सा था. इसलिए दोनों में प्यार भी गहरा था. बक्कू, जब देखो नूरां के पास नजर आती. उनकी बातें ही खत्म नहीं होती थीं.

बक्कू का ब्याह भी हो चुका था, लेकिन वह मायके में ही जमी बैठी थी. एक दिन नूरां ने उससे कहा, "अरी नामुराद, मायके में क्या रखा है? क्यों मन मान कर बैठी है! जवानी के ये दिन लौटकर तो आयेंगे नहीं. अपना घर बन जाये तो फिर मायके का क्या काम? मेरा तो मायके में जी नहीं लगता. बहुत मन करे तो चली जाती हूं, पिता और भाई-बहनों से मिल आती हूं, लेकिन दिल यही चाहता रहता है कि उड़कर अपने घर पहुंच जाऊं. दो दिन काटना भी भारी पड़ जाता है. एक तू है कि मां-बाप के घर में ही जमी बैठी है! ! "

बक्कू ने लंबी-सी आह भरी और बोली, "बात तो सच है बहन. रहमू जैसा छैल-छबीला जो तुझे मिल गया है, मेरा साथी भी ऐसा ही होता तो हीर-रांझे की जोड़ी होती! पर मैं तो कव्वे के हाथ बुलबुल फंस गयी हूं. दिल कैसे मिलते? अपनी तकदीर को दिन-रात रोती हूं. मेरे लिए ससुराल में क्या रखा है?"

"लेकिन ऐसा कब तक चलेगा?" नूरां ने कहा, "कभी यह भी सोचा है?"

बक्कू का जवाब था, "एक साल तो गुजर गया है. एक और निकल जाये तो तलाक के लिए अर्जी जायेगी. पल्लू पाक हो जाये तो फिर कोई दूसरा दरवाजा देखूंगी. और मेरे बस में ही क्या है? मुझे भी तेरे रहमू जैसा ही जवान मिल जाता तो जिंदगी संवर जाती!"

उसके मुंह से रहमू का नाम इस तरह सुनकर नूरां को पहले अजीब लगा था, पर अब तो उसे ऐसा लगा जैसे बक्कू की लार टपक रही हो और उसे ध्यान आने लगा कि यह किसी न किसी बात-बहाने से ऐसे वक्त आती है, जब रहमू घर में हो या आने वाला हो. फिर उसे यह भी ध्यान आ गया कि बक्कू कितनी अजीब निगाहों से रहमू को देखती है. सब कुछ देखते हुए भी उसने कहा कभी कुछ नहीं था ताकि बक्कू का जी मैला न हो. इसके साथ ही उसे कुछ ऐसी घड़ियां भी याद हो आयीं, जब वह चाहने लगती थी कि बक्कू अपने घर जाये—यहां क्यों बैठी है? फिर भी उसने मुंह से कुछ नहीं कहा था.

उसे घबराहट होने लगी. बक्कू जरूर रहमू को वासना की नजर से देखती है और देख-देख खुश होती है. उसे ध्यान आने लगा, वह कितनी बेझिझक और शोख होकर उससे बातें करती है, उसे छेड़ती और ठट्ठा करती है!

उसे यह भी ध्यान आया कि यह जो बात-बात में कहती है कि तुम्हारी तो हीर-रांझे की जोड़ी है. . .कहीं उसे रांझा मानकर खुद हीर बनने के चारे तो नहीं कर रही है!

सोच के इस मोड़ पर उसे खास झटका लगा—क्या पता मेरे बहाने वह रहमू से आंखों का खेल खेलने आती हो. बस, वह डूबने-उतराने लगी. जाने वह कहां जा उतरी, पर साथ ही उसे ध्यान आ गया—ये तो मेरे और रहमू के प्यार के रंग हैं. मैं तो यों ही भ्रम में पड़ गयी हूं. बेचारी बक्कू यहां तक नहीं जा सकती. और वह सोच के भंवर में से निकल आयी.

सचमुच वे दोनों औरत-मरद नहीं थे. उनकी तो आशिकी-माशूकी थी और उनकी उम्र की गाड़ी प्यार की पटरियों पर कामनाओं के सहारे चली जा रही थी.

अपनी जिंदगी के गहरे रंग उसकी आंखों के सामने नाचने लगे, पर साथ ही उसे ध्यान आया कि चाव-स्वभाव तो अब भी बहुत हैं, लेकिन पहली रंगत का जवाब नहीं था. रहमू कुछ थका-थका-सा लगता है. . .और उसका दिल फिर डोलने लगा, लेकिन सोच मोड़ खा गयी. आजकल काम भी बहुत है, साथ ही जवानी के चाव एक-से कब रह सकते हैं! मैं तो यों ही पगला गयी हूं!

यह सोच-विचार ज्यादा देर नहीं रहा. उनके बीच कोई अंतर नहीं आ पाया. और वह बोली, "अरी, छोड़ बरसों की बातें. . .जवानी का तो पल-पल भारी होता है." बातें फिर चल पड़ीं.

"तो यहां कहां पल-पल भारी नहीं है! लेकिन तकदीर को कौन टाले!"

"तो फिर तकदीर में जो था, वह मिल गया. . .साथ ही मेरा खयाल है, इतना बुरा भी नहीं है– जवान है, तंदुरुस्त है. . .रंग जरा-सा मैला है, पर उससे क्या होता है?"

"सिर्फ रंग की ही बात नहीं है, मुझे तो उसकी आदतें भी अच्छी नहीं लगतीं. प्यार के बोल तो वह जानता ही नहीं कि क्या होते हैं."

"यह तो इसलिए भी होगा कि तू भी उससे प्यार नहीं करती."

"वह तो है, लेकिन मेरा जी ही न माने तो मैं उससे प्यार कैसे करूं?"

"यह बात है तो तुझे उससे गिला नहीं होना चाहिए."

"फिर मैं क्या करूं?"

"मैं तो कहती हूं, जो डूब गया सो मोती! उसका खयाल

पाकिस्तानी लघुकथा

जनाजे के साथ-साथ

▣ अफजल अहसन शाद

शाम जब ढलने लगती तो मोहल्ले में करीम खां घर-घर फेरी लगाता नजर आता. बच्चे कभी-कभी उसकी लाठी छीनने की कोशिश करते, पर वह कभी नाराज न होता, न ही गांव के तंग आये हुए चौकीदार की तरह किसी को गालियां देता. शायद यही वजह थी कि बच्चे कभी उसका पीछा न छोड़ते. वे हर घर तक उसके पीछे-पीछे जाते, जहां करीम खां को अपने सफेद बालोंवाले साथियों को बुलाना होता. मोहल्ले के बायीं ओर पीपल का एक खासा बूढ़ा दरख्त था—इसके नीचे गांव के 'बाबा' एक तख्तपोश पर इकट्ठा होते और अपनी-अपनी कहते-सुनते. फिर गयी रात तक ये बातें छिड़ी रहतीं. किसी को घर का खयाल ही न रहता.

उम्र के खाये ये लोग जब बातों में मस्त होते तो गांव के अश्टल्ली लड़कों की कोई न कोई टोली उधर का चक्कर जरूर लगाती. कई बार तो कोई लड़का चोरी-छिपे एक-आध ताना भी दे मारता. अश्टल्ली लड़कों की जबान पर हर रोज कोई नया वाक्य होता, जिसे वे तख्तपोश के पास से गुजरते हुए ही बोलते. उस दिन उनकी जबान ने यह फिकरा कसा :

"पोपलू-पोपलू—जिंदाबाद!"

और फिर टोली के नेता लड़के ने यही फिकरा तान लगाकर कहा, "पोपलू-पोपलू—जिंदाबाद!"

तख्तपोश की सभी जानों ने अपनी निगाहें लड़कों की ओर घुमा दीं.

एक बुजुर्ग ने पूछा, "भई, यह पोपलू-पोपलू क्या होता है?"

सभी की निगाहें करीम खां पर टिक गयीं, जैसे वही इस बात का जवाब दे सकता हो.

"बूढ़े आदमी को कहते हैं, भाई!" करीम खां ने हंसते हुए बताया.

"मुझे तो समझ नहीं आता बूढ़े कसे पोपलू कहे जाने लगे हैं." एक बूढ़े ने अपने सिर पर हाथ फिराते हुए कहा.

करीम खां ने उस बूढ़े की ओर देखा. "देखो, तुमने अभी अपने सिर पर हाथ फिराया था न?"

"हां, फिराया था. . . " कहते हुए उसने एक बार फिर हाथ फिरा लिया.

"सिर पर कोई बाल नहीं रहा न!" और करीम खां की बूढ़ी आंखें और भी अनेक लोगों के सिरों को टोहने लगीं. "ऐसे ही हमारे मुंह के सब दांत गायब हो गये हैं. और मुंह लगता है—आले जैसा!" और करीम खां ने अपना हाथ उसे बूढ़े के मुंह के पास लाकर उसके खाली जबड़ों पर फिरा दिया.

यह असलियत जानते ही कि लड़के उनका मखौल उड़ा कर गये हैं, कई जने तैश में आ गये और तख्तपोश देखते ही देखते खाली हो गया. कुछ सूखी हुई टांगें उन लड़कों को पकड़ने के लिए तेजी से बढ़ने की कोशिश करने लगीं, लेकिन करीम खां ने उन्हें रोक दिया. उसने उन्हें समझाया कि ऐसा करने से हमारी बुजुर्गियत पर कलंक लगेगा. लोग तो यही कहेंगे कि हम उम्र के फर्क को नहीं पहचानते. उनका वक्त है मौज-मेला करने का!

करीम खां की इस बात पर कई लोगों ने नाक-भौं सिकोड़े, फिर भी उसकी शान में किसी ने गुस्ताखी नहीं की. सभी जानते थे कि करीम खां सयानी बात ही करता है. . .

ये सारी बातें करीम खां के जनाजे के साथ चल रहा, उसकी टोली का एक बुजुर्ग, बड़ी हलीमी से आंखों को पोंछता हुआ, शिरकत कर रहे जनाजे के अन्य लोगों को सुनाये जा रहा था. टोली के दूसरे बुजुर्ग सारी बातें बड़े ध्यान से सुनते रहे थे और बीच-बीच में अपनी बातें छेड़ लेते थे. फिर उनकी बातें करीम खां की ओर मुड़ जाती थीं.

जब करीम खां का शरीर खाक के सुपुर्द कर दिया गया, तो उसी दिन सांझ ढलने के बाद तख्तपोश पर शोकसभा मनायी गयी. सभी बुजुर्गों ने करीम खां की कहानी सुनाने वाले बुजुर्ग को, करीम खां की मौत से खाली हुई जगह पर प्रधान चुन लिया.

अब तख्तपोश पर बैठने वालों की संख्या सिर्फ सात ही रह गयी थी, पर पांच-छह साल पहले यह संख्या पच्चीस-तीस तक होती थी. सारे बुजुर्ग हैरान थे—गांव में और कोई आदमी इस बीच बूढ़ा ही नहीं हुआ था! □

● अनुवाद : सुदीप

रखेगी तो वह भी तुझसे प्यार करने लगेगा. एक बार प्यार हो जाये तो छोटी-छोटी बातें तो सामने ही नहीं आतीं."

"कहती तो ठीक हो, लेकिन यही तो मेरे बस में नहीं है."

"मैं तो कहती हूं, छोड़ इन बातों को, आंखें मींचकर जवानी के पांव पकड़ ले. फिर मजे ही मजे हैं!"

"जवानी के पांव ही तो पकड़ रही हूं."

"वह कैसे?"

बक्कू कुछ झिझक गयी, लेकिन उसने संभलकर कहा था और उसके चेहरे पर रौनक आ गयी थी, लेकिन नूरां उलझ गयी. बक्कू के बोल नूरां के कानों में नाचने लगे, "जवानी के पांव ही तो पकड़ रही हूं."

इसके साथ ही बक्कू चली गयी और नूरां उसे नये रंगों में अपने घर आते और रहमू के साथ मसखरियां करते देखने लगी.

▣

कुछ दिन बाद रहमू शहर जाने वाला था और बक्कू भी आयी हुई थी. वह पटाखे की तरह बोली, "रहमू, मेरे लिए क्या लाओगे?"

रहमू ने कहा, "कांच की चूड़ियां."

"पर वो तो टूट जायेंगी," बक्कू बोली, जैसे उसका दिल धड़क गया हो.

"तो संभालकर रखना," रहमू ने कहा.

उस वक्त उन दोनों की आंखें चमक उठी थीं. नूरां ने घबराकर रहमू की तरफ देखा और वह खिसिया गया, जैसे चोरी पकड़ी गयी हो, लेकिन उसने संभलते हुए नूरां से पूछा, "तुम्हारे लिए क्या लाऊं?"

"कुछ नहीं!" नूरां ने बेदिली से कहा.

"क्यों नहीं?" रहमू ने पूछा, "जो कहोगी, ले आऊंगा."

"तो जो जी में आये, ले आना, लेकिन चूड़ियां न लाना."

"पर क्यों?" रहमू ने ताज्जुब से पूछा.

"मेरे पास सुहाग का चूड़ा है!" नूरां का जवाब था.

रहमू चला गया तो बक्कू बोली, "अरी, यह सुहाग के चूड़े की क्या बात आ गयी! मेरे पास नहीं है सुहाग का चूड़ा?" मन में जैसे कुछ खटका आ गया हो!

"और बात है," नूरां ने उसके गाल पर चिकोटी भरते हुए कहा. यह चोट बक्कू सह नहीं सकी और नाराज होकर घर चली गयी.

अब नूरां की नजरें तेज और सोच तीखी हो गयी. उसने सोचा, बक्कू को दूर कर देना ठीक नहीं है. नजरों में रखना चाहिए. उसके लिए रहमू चूड़ियां लाया तो उसने खुद ही बक्कू को बुलवा भेजा और अपने हाथों चूड़ियां पहना दीं.

बक्कू को चूड़ियां चढ़ाते समय वह सोच रही थी—कांच की ही हैं. टूट जायेंगी. मेरे पास तो सुहाग का चूड़ा है. इनका भला उससे क्या जोड़ है?

▣

कुछ दिन बाद—एक बार नूरां रहमू की रोटी लेकर जा रही थी. कुएं के पास एक खेत के मोड़ पर पहुंची तो उसने देखा, बक्कू कपड़ों की गठरी पकड़े गांव की ओर चली आ रही थी और रहमू लौटकर हौदी पर बैठ रहा था.

—तो यह बात है! नूरां के जी में आया वह बक्कू को कच्चा ही खा जाये. इतने में वह नजदीक आ गयी और दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ीं.

"अरी, तू गांव के कुएं को छोड़कर इतनी दूर आयी है कपड़े धोने?" नूरां ने पूछा.

बक्कू बोली, "एक तो वहां भीड़ बहुत होती है, दूसरे पानी भी गंदा हो जाता है."

"यह बात तो है!" नूरां की आंखें धधक उठीं. "हमारा पानी तो गंदा नहीं होता."

"साथ ही. . .,' बक्कू बोली, "तुम्हारी बेरी के बेर बड़े मीठे हैं. सोचा, तू आयेगी तो मिलके खायेंगी."

"तभी तूने मेरा इंतजार भी नहीं किया!"

यह सुनकर बक्कू लाजवाब हो गयी, लेकिन उसने कहा, "कपड़े धो लिये थे. सोचा, देर हो जायेगी. फिर बेर तो मैंने खाये ही नहीं."

"तो आ फिर," नूरां बोली. "मिलकर रोटी भी खायेंगे और बेर भी."

"अब तो आ गयी हूं. फिर किसी दिन सही!"

बक्कू के मुंह से 'फिर किसी दिन सही' सुनकर नूरां को धक्का-सा लगा. उसने कह दिया, "तो फिर मुझे भी घर से साथ लेती आना."

बक्कू तमककर बोल उठी, "साथ भी लेती आऊंगी और अगर तू कहेगी तो फिर कभी इधर का रुख भी नहीं करूंगी." उसका दिल धक्-धक् करने लगा था.

"अरी! यह क्या कह दिया तूने!" नूरां ने बक्कू की आंखों में आंखें डाल दीं.

"क्यों! तेरे मन की बात नहीं की!" बक्कू का जवाब था.

"पगली न हो तो!" नूरां ने कहा. "रहमू पर न भी हो, तो भी तुझ पर तो मुझे हर तरह का भरोसा है."

"अच्छा! तो तू यहां तक भी पहुंच गयी है!" बक्कू की आवाज में रोष भी था, तेजी भी.

नूरां ने कहा, "यह तो तू ही मुझे समझा रही है! मैं तो कहीं नहीं गयी."

इसके बाद दोनों आगे बढ़ गयीं. बक्कू को बार-बार यही घुटन हो रही थी—मैंने क्यों कह दिया कि तू कहे तो मैं फिर कभी इधर रुख भी नहीं करूंगी. और फिर यह क्यों पूछ लिया—क्यों, तेरे मन की बात नहीं की! और नूरां सोच रही थी—मुझे यह नहीं कहना चाहिए था—फिर मुझे भी घर से साथ लेती आना.

वे दोनों एक-दूसरे से दूर होती जा रही थीं.

▣

फातमा उन दोनों की सहेली थी. सुघड़, सयानी, नेक और संवेदनशील.

नूरां ने घर जाकर उसे बुलाया और बताया, "मैं तो क्या का क्या होता देख रही हूं!"

वह बोली, "मैं तुम दोनों की एक-सी सहेली हूं, लेकिन मैली बात तो किसी की साथिन नहीं होती, तू फिक्र मत कर. मैं उसे नजरों में रखूंगी. मेरे रहते क्या मजाल है कि तुझे कोई दुख पहुंचे. हम तो शराफत के भाईवाल हैं."

नूरां बोली, "मुझे तुझसे यही उम्मीद थी."

वह बोली, "बस, यह बात याद रख, सुन, हौसला मत हारना, मन की मन में रखना और मुंह से कुछ मत निकालना कहीं ऐसा न हो, आंख-मिचौली होने लगे. तूने जो बातें आज उससे कही हैं, वह ठीक नहीं किया. आगे से ऐसी बात जबान पर न लाना."

"दिल तो मैंने काफी मजबूत किया था," नूरां ने कहा, "लेकिन बेबस होकर ही मुंह से निकाल बैठी हूं. बात खटक उसे भी गयी है, मैं जानती हूं. आज क्या पता वह इधर आये ही नहीं!"

"न आये तो तू ही उसे बुलवा भेजना," फातमा ने सलाह दी तो नूरां बोली, "यही ठीक है. मैं आप बुलवा लूंगी."

फातमा अपने घर चली गयी.

▣

शाम से थोड़ी देर पहले नूरां ने बक्कू को बुलवा भेजा. वह बड़ी चटक-मटक से आयी और आते ही बोली, "मैंने तो सोचा था कि इधर से अब बस ही भली है, पर तूने बुलवा भेजा, तो मैं रह न सकी."

नूरां ने यों ही हैरान होते हुए पूछा, "क्यों, ऐसी भी क्या बात थी?"

बक्कू बोली, "तेरा क्या है? आज तुझे रहमू पर एतबार नहीं है. कल क्या पता मुझ पर भी न रहे. ऐसे इन्सान से दूर रहना ही अच्छा है."

"यह लो!" नूरां ने बक्कू की आंखों में आंखें डाल दीं, "तेरा मतलब है कि आगे से कोई तुझसे चुहल भी न करे?"

"न बाबा!" बक्कू बोली, "मैं तो बाज आयी ऐसी चुहल से जो किसी की जान ही ले ले! कोई जमाने की जुबान पकड़ सकता है? ऐसा ही कोई और भी सोचने लगे तो मैं तो घड़ी बीतने से पहले ही कुछ खा मरूं!"

"देखा न!" नूरां समझाते हुए बोली, "अपना घर होते मायके में बैठना कितना मुश्किल होता है. हंसी-ठट्ठे में भी सोच कहां ले जाती है!" मन ही मन वह चाहती तो यही थी कि बक्कू का मन बदल जाये और वह ससुराल चली जाये.

बक्कू बोली, "कुछ भी हो, अब फजलू के पास तो मैं जाने से रही!"

इस तरह थोड़ी देर तक बातें होती रहीं. फिर बक्कू अपने घर चली गयी. अब उसकी शंका दूर हो गयी थी. अब वह फिर बेझिझक नूरां के घर आने-जाने लगी.

▣

पांच-छह दिन बीत गये. एक दिन फातमा नूरां के पास आयी और आते ही बोली, "यहां तो अंधेर होने लगा है री! मैं समझती थी, तू यों ही भ्रम में पड़ी हुई है पर वह कमजात तो बड़े सिलसिले बना बैठी है. कुछ न रहे उसका! उसे तेरे सुहाग पर ही चोट करनी थी!"

नूरां को कुछ समझ नहीं आया. उसने तेजी से पूछा, "क्या हुआ? तूने क्या देखा है? जल्दी बता!"

वह बोली, "मैं अपने कुएं की तरफ जा रही थी. मुझसे

थोड़ा आगे बक्कू भी दौड़े जा रही थी. तुम्हारे कपास के खेत के पास पहुंची और दो कदम मुड़कर खड़ी हो गयी. रहमू पानी दे रहा था. मैं जल्दी-जल्दी कदम उठाकर पास हो गयी. मैंने उसे पीछे हटकर फिर आगे जाते देखा. साथ ही यह भी सुना—"रात को साईं के झोंपड़े में आऊंगी–जब मुल्ला बांग देगा."

"हाय तेरा कुछ न बचे!" नूरां ने हाथ मलते हुए कहा, "यह मुआ साईं भी है इसके बीच!"

फातमा बोली, "नहीं री, झोंपड़ा तो जाने कब से खाली पड़ा है. बेचारा साईं, जाने कहां चला गया है!"

"तो फिर आज जाने उनकी मुलाकात हो या न हो," नूरां ने अपना खयाल जाहिर किया.

फातमा ने पूछा, "क्यों?"

नूरां बोली, "उसने तुझे देख जो लिया है! चोरों के पांव नहीं होते. आज नहीं जायेगी वह वहां."

"तेरा खयाल ठीक है!" फातमा ने कहा. "पर नहीं. रहमू से बात करके लौटते हुए बक्कू ने मुझे देखा तो था, लेकिन मैं अपने ध्यान में हो गयी थी. रहमू को मैंने कानी आंख से देखा था. वह अपने काम में मगन हो गया था."

"तो फिर?" नूरां सोच में डूब गयी.

"कोई हिकमत लड़ानी पड़ेगी," फातमा ने कहा, "चुपचाप. . .ताकि शक तक न हो."

नूरां को ढंग सूझ गया. झट से बोली, "एक काम कर. फिर देख, कितना मजा आता है!"

"क्या?"

नूरां बोली, "मुल्ला की बांग से जरा-सा पहले तू बक्कू की तरफ चली जाना और उसे बातों में लगाये रखना ताकि मैं उससे पहले साईं के झोंपड़े में पहुंच जाऊं."

फातमा की बाछें खिल गयीं. उसने 'शाबाश!' कहते हुए नूरां को बाहों में भर लिया. यह तीर निशाने पर लगकर ही रहेगा.

▣

मुल्ला की अजान का वक्त हुआ तो रहमू घर से जाने को तैयार हुआ. नूरां बोली, "कहां चले इस वक्त? सारे दिन के थके-टूटे हो–अब जरा आराम कर लो."

"जरा जाले की तरफ जा रहा हूं," "रहमू बोला, "अभी आ जाऊंगा."

"लेकिन जरूरत क्या है इस वक्त जाने की? दिन नहीं चढ़ेगा?" नूरां ने मुंह फुला लिया.

रहमू बोला, "बात दरअसल यह है कि वह रेशमं का झगड़ा है न! बिरादरी बैठी थी. बुलाया तो मुझे भी था, लेकिन मैं नहीं गया. कुछ लोग कहते थे, लिखत देकर दफा करो बदकार को, और कुछ कहते थे कि हवा चले तो कौन-सा पेड़ नहीं डोलता! मिट्टी डालो. . .जरा पता तो कर आऊं क्या फैसला किया है!"

"पर हमें क्या उन फैसलों से!" नूरां ने कहा, "उसके लच्छन ही कब अच्छे थे! उसे मिरासन के पीछे भागते शर्म नहीं आती और उस मुई को ठोकर लग गयी तो कौन-सा कहर हो गया है? दुत्ते को किसने मारा-पीटा था? किसने उसे लानत भेजी थी?"

"उस बेशर्म ने तो हड्डी-हड्डी कानी कर दी है!" रहमू बोला, "लेकिन औरतों को तो. . ."

"संभलकर चलना चाहिए," नूरां ने बात को बीच में ही काट दिया और कड़वाहट से कहा, "मर्द संभलकर न चले तो उसे क्या हक है औरत को बदनाम करने का! जो सेंध लगायेगा, उसके ही घर में सधें लगेंगी!"

यह सुनकर रहमू के पांव तले से जैसे जमीन सरक गयी. उसके उठते हुए पांव रुक गये. वह भी तो सेंध लगाने जा रहा था, लेकिन फिर वह मर्द बनकर संभल गया. "मैं अभी आता हूं."—कहते हुए वह बाहर निकल गया.

▣

मुल्ला ने बांग लगायी और रहमू ने बड़े चाव में भर-कर, आगे बढ़ते हुए बक्कू को अपने आलिंगन में ले लिया. वह कुछ देर पहले ही वहां पहुंच गया था. बाहों को कसते हुए वह बोला, "कितनी मुश्किल से मिलाप हुआ है—बक्कू!"

"प्यार के मेले तो मुश्किलों से ही होते हैं. मैं जाने क्या कुछ झेलकर यहां आयी हूं. . ." इतना कहते हुए उसने अध-ढंके चेहरे से चादर उतार दी.

"नूरां!" एक दबी चीख रहमू के मुंह से निकल गयी.

नूरां ने गरमी भरे स्वर से कहा, "अगर तुम मुझे बक्कू ही समझ लो तो क्या बिगड़ता है? मैं रोज इसी वक्त यहां आ जाया करूंगी."

रहमू की जान जैसे शिकंजे में आ गयी थी. उसकी नजरें झुकी हुई थीं और जमीन उसे रास्ता नहीं दे रही थी कि वह उसमें समा जाये. वह मिन्नत करने लगा, "मुझे माफ कर दे नूरां, फिर इस तरह की भूल कभी नहीं होगी."

उस वक्त उन्होंने देखा—रात की नीम रोशनी में एक काला-सा साया उनकी तरफ आते-आते रुका और फिर जल्दी से गांव की ओर लौट गया.

▣

सुबह-सुबह फातमा नूरां के पास आयी—यह पूछने कि रात का नाटक हुआ या नहीं? अगर हुआ तो किस तरह हुआ? नूरां ने हंसते हुए सारा किस्सा उसे सुनाया और फिर वे देर तक हंसी से लोट-पोट होती रहीं.

कुछ देर बाद नूरां बोली, "जा, जरा जाकर बक्कू का हाल-हीला तो देख आ!"

"उसका हाल-हीला क्या देखना है!" फातमा बोली, "तू उससे कहा करती थी न, आंखें मींचकर जवानी के पांव पकड़ ले, सो उसने आंखें खुलने पर जवानी के पांव पकड़ लिये हैं. वह तो तड़के-सवेरे ही भाई को साथ लिये ससुराल चली गयी है." ▣

● अनुवाद : सुबोध

नेपाली कहानी

श्री बी.पी. कोइराला नेपाल की राजनीति और साहित्य दोनों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं. यहां प्रस्तुत है उनकी कलम से नेपाली जनजीवन में व्याप्त अनमेल विवाह के परखचे उड़ाती एक विचारोत्तेजक रचना

सवाल

▣ विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला

कटक बहादुर ने एक चौदह वर्षीया लड़की से शादी की और उसे अपने घर ले आया.

जो लोग कटक बहादुर से परिचित नहीं, मुझे उन्हें बस यही बताना है कि यह शादी मेरे लिए एक धक्का है, एक आघात है और मैं स्वयं उसके बारे में और बहुत कुछ जानना चाहता हूं.

सूबेदार कटक बहादुर एक अधेड़ आदमी है. मैंने किसी सूबेदार को कमउम्र नहीं देखा. यह शायद उसकी दूसरी शादी है और मेरा खयाल है, पहली बीवी से उसके दो बच्चे होंगे और उसके निधन के बाद उसने उस लड़की को अपनी दूसरी बीवी बनाने की बात सोची होगी.

सूबेदार की सरकारी समस्याएं इतनी होंगी कि अपनी बोरियत खत्म करने के लिए चौदह वर्षीया लड़की से शादी कर लेना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं, पर उस भोली-भाली लड़की के लिए, जो अभी शादी का मतलब भी नहीं समझती होगी, यह सब कुछ अवश्य नया होगा.

मैंने पहले भी एक ऐसी शादी देखी है. मैं दूल्हे की ओर से आया था. बारात के प्रस्थान का समय चार बजे था, पर आठ बजे तक बारात दुल्हन के घर पहुंच नहीं पायी थी. हम सब बहुत शोर मचाते रहे, पर दूल्हा मियां गुसलखाने से ही नहीं निकले. उसका मेकअप पूर्ण नहीं हो रहा था. आखिर इंसान एक ही बार तो अपने को सजाता है.

मैंने दूल्हे को नहीं देखा था. गांव की सैकड़ों औरतें दूल्हे मियां को एक नजर देखने के लिए एकत्रित थीं. न जाने उनके मन में कैसे-कैसे विचार आ रहे होंगे? दूल्हे के जिक्र के साथ ही मस्तिष्क में एक बीस-बाईस वर्षीय युवक का चेहरा उभर आता है. शायद सब गांववालियां भी यही समझ रही थीं. काफी देर बाद शोर मचा, 'दूल्हा आ रहा है. . . दूल्हा आ रहा है' तो सब दरवाजे की ओर दौड़ पड़े.

आने वाले सभी अधेड़ व्यक्ति थे. मैं अनुमान न लगा सका कि उन सब में दूल्हा कौन हो सकता है? काला कोट पहने हुए एक महाशय सब से भिन्न लग रहे थे. मैंने सोचा, यही दूल्हा होगा और. . .सचमुच वह दूल्हा ही था. वह अपनी गतिविधियों से प्रकटतः अपनी भावनाओं को छिपाने का पूरा प्रयत्न

कर रहा था, पर उसका चेहरा सब कुछ खोले दे रहा था.

आठ बजे दूल्हा अपनी बारात लेकर चला. वह तो हाथी पर सवार था. और बाराती पैदल थे. दूल्हे को देखते ही मेरे मस्तिष्क में दुल्हन का एक परंपरागत चित्र उभरा. मैंने साथ वाले से पूछा, "यह इनकी पहली शादी है?"

"नहीं!" उसने धीरे से कहा.

"उसकी पहली बीवी कहां है?"

"वह मर गयी. . . .उससे उसके दो बच्चे हैं." वह व्यक्ति बताता रहा, "मजबूरन उसको दूसरी शादी करनी पड़ी है. तुम तो जानते ही हो कि कोई भी मर्द न घर की देखभाल कर सकता है, न बच्चों का पालन-पोषण."

उस व्यक्ति की बातें सुनते-सुनते मैंने सोचा, निश्चय ही नयी दुल्हन भी अधेड़ उम्र की होगी. तभी तो वह घर-गृहस्थी भी करेगी और बच्चों को भी संभाल सकेगी.

बारात पहुंची तो मैं जल्दी से मंडप में प्रविष्ट हुआ. फिर पता चला, दुल्हन आ गयी है. बच्चे और औरतें दुल्हन को देखने के लिए टूटे पड़े थे. मेरा खयाल है, वह भी यही समझ रहे होंगे कि आज की दुल्हन कम से कम पच्चीस-तीस वर्ष की होगी, जो घर-गृहस्थी में प्रवीण और बच्चों के पालन-पोषण में कुशल होगी. जल्दी ही दो स्त्रियां सुर्ख रेशमी चादर में लिपटी हुई एक किशोर आयु की लड़की को मंडप में लायीं. वह मुश्किल से चौदह वर्ष की थी, जिसे चालीस वर्ष के मर्द के साथ ब्याहा जा रहा था, जिसके पहले से ही दो बच्चे भी थे.

▣

सूबेदार कटक बहादुर के बारे में भी जब मैंने सुना कि उसने चौदह वर्षीया लड़की को बीवी बना लिया है तो उस पुरानी शादी की याद ताजा हो गयी. उस लड़की हरीमनी के लिए मेरा दिल दुखी हुआ. न जाने वह खुश होगी या परेशान. खामखाह उससे हमदर्दी महसूस करने लगा और यूंही उसके बारे में सोचता चला गया. उस छोटी-सी लड़की ने जब अपनी शादी के बारे में सोचा होगा तो कैसे उसके तन-मन में फुलझड़ियां-सी छूटी होंगी. सखियां-सहेलियां उसे छेड़ती होंगी तो वह शरमाकर, लजाकर दुहरी हो जाती होगी. उसके मस्तिष्क में पति की कल्पना क्या होगी—एक नवयुवक, बांका-सजीला-सा राजकुमार या पोपला अधेड़ उम्र इंसान! निश्चय ही उसके सपने कुछ और होंगे. उसने प्रेम के, ताजगी और सुख के सपने देखे होंगे.

मैंने हरीमनी के बारे में सोचा. वह अपने सुहागकक्ष में जब अपने दूल्हे को देखेगी तो उस पर क्या बीतेगी? कटक बहादुर और हरीमनी क्या बातें करेंगे? मैंने अपने आप ही हरीमनी के सपनों की ताबीर ढूंढ़नी शुरू की. अपने दूल्हे को देखकर उस पर क्या प्रभाव पड़ा होगा? यह जानना बहुत कठिन है. कल्पना में मैंने सूबेदार को अपनी दुल्हन से बातें करते हुए सुना. कटक बहादुर ने कितनी याचना से कहा, "मेरी रानी!"

और हरीमनी के मन में बचपन की यादें कौंध गयीं. रेत के घरौंदे बनाते और बचपन के खेल खेलते-खेलते उसे पड़ोसी के लड़के ने रानी कहा था और वह स्वयं राजा बना था. वह खेल कितना सुंदर और वह स्वर कितना कोमल था, पर इस समय एक बूढ़े का खेल उसे कतई अच्छा न लगा.

कटक बहादुर ने हरीमनी को और निकट घसीटते हुए पूछा, "मेरी रानी! क्या तुम भी मुझे चाहती हो?"

"हां! मैं तुमसे प्यार करती हूं." हरीमनी ने यांत्रिक अंदाज में उत्तर दिया, "मुझे प्यार करने दो. . ." सूबेदार ने याचना करने के अंदाज में कहा. हरीमनी हैरान रह गयी. (और मैं कल्पना ही कल्पना में उससे अधिक विस्मित हुआ कि उसने जो प्यार करने की इच्छा की है, यह एक बच्चे के लिए है या उसे बीवी समझकर.)

हरीमनी ने बाहों के आलिंगन को तोड़ते हुए कहा, "मुझे नींद आ रही है, सोने दो."

"इतनी जल्दी." कटक बहादुर ने गिड़गिड़ाकर कहा और उसके चेहरे पर निराशा और यातना की परछायीं थिरक गयी, पर उसने फिर प्रयत्न करके कहा, "आओ, बातें करें. सोने के लिए तो उम्र पड़ी है."

हरीमनी पर नींद छायी हुई थी, पर वह सो न सकी. वह कुछ भी बोले बिना एकटक अपने पति का मुंह ताकती रही. इस प्रकार जैसे वह जान न पा रही हो कि कटक बहादुर कहना क्या चाहता है. और फिर जो कुछ वह समझ सकी है, उसमें उसकी क्या दिलचस्पी हो सकती है.

मैं नहीं कह सकता कि यह सारी तस्वीरें क्यों मेरी आंखों में घूम गयीं. हो सकता है, हरीमनी और कटक बहादुर में इनमें से कोई भी बात न हुई हो, जिनके बारे में मैंने कल्पनाओं के इतने महल निर्मित कर लिये हैं. संभव है, उसने केवल इतना पूछा हो, "मेरी बच्ची! तुम्हारा नाम क्या है?" इतनी स्नेह और प्रेम भरी आवाज सुनकर उसने उत्तर दिया हो.

"हरीमनी!"

"तुमने कहां तक पढ़ा है?"

"क ख खत्म करके मैंने अभी पहली पुस्तक ही शुरू की थी."

"अच्छा, अब मैं तुम्हें और पढ़ाऊंगा. तुम्हें नींद आ रही है, सो जाओ."

एक पिता, जिस प्रकार अपनी बेटी का खयाल रखता है, शायद उसने ऐसा ही किया हो, और फिर अपने घर के और सरकार के काम-काज में लग गया हो. सुबह उसे जगाया हो. . . नाश्ता कराया हो और तैयार करवा कर स्कूल भेज दिया हो.

पर एक सवाल मुझे परेशान किये हुए है कि अगर ऐसा ही होना था तो सूबेदार कटक बहादुर को उसके साथ शादी करने की जरूरत क्या थी? क्या इसलिए उसके साथ शादी की थी कि उसकी कोई बेटी नहीं थी और वह दो बेटों के साथ एक बेटी को भी पालना चाहता था और अगर ऐसा ही होगा तो फिर उसे अपनी इस बेटी की शादी करनी होगी और उसे किसी और के घर भेजना होगा. न जाने क्यों ऐसे सवाल मुझे परेशान किये हुए हैं? ☐

● अनुवाद : सुरजीत

गुस्ताखियां

▣ प्रकाश पंडित

यह जिक्र उन गोयनकाजी का नहीं है, जिनका नाम बिरला और टाटा के साथ लिया जाता है, बल्कि उन गोयनकाजी का है, जिनके कारोबार का एक अंग बंगला फिल्में बनाना था और बंगला फिल्में बनाते-बनाते जिन्हें 'चांदी की दीवार' नामक हिंदी फिल्म बनाने का शौक चर्राया था.

बंगला फिल्मों के सिलसिले में उनकी कार्यपद्धति क्या थी, यह तो मालूम नहीं, लेकिन जब 'चांदी की दीवार' के संवाद लेखक के रूप में उन के साथ मुझे काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो पता चला कि उन जैसा उसूलों का धनी पूरे फिल्म-जगत में दूजा नहीं है.

'चांदी की दीवार' की दुबली-पतली नायिका नूतन, काफी मोटी राशि की किस्त लेकर स्टूडियो पहुंची. सेट तैयार था. उस सीन से संबंधित हर चीज और हर कलाकार मौजूद था. नायिका को उस सीन में काफी लंबे-लंबे संवाद बोलने थे. बार-बार उसका गला सूख जाता था. गले की तरावट के लिए उसने डायरेक्टर दलीप बोस से लिबू-पानी की फरमाइश की.

दलीप बोस ने तुरंत अपने सहायक को लिबू-पानी के लिए दौड़ाया ताकि शॉट लेने में देर न हो . सहायक दौड़ा, लेकिन सेट के दरवाजे के पास लोहे की कुर्सी पर विराजमान गोयनकाजी द्वारा दबोच लिया गया, "इस काम की घड़ी में, जो है सो, कहां भागे जा रहे हो?"

"नूतनजी के लिए लिबू-पानी लाने."

"लिबू पानी क्यों?" गोयनकाजी ने आश्चर्य व्यक्त किया, "जो है सो, सादा पानी दो."

"जी, उनके गले में तकलीफ है."

"तकलीफ है तो अपने पैसे से इलाज करवाएं. कांट्रैक्ट में लिबू-पानी की कोई शर्त नहीं है, जो है सो. . .!"

डायरेक्टर और प्रोडक्शन इंचार्ज ने उन्हें बहुत समझाया कि इस तरह हीरोइन का मूड खराब हो जायेगा और वह कई री-टेक देकर हजारों रुपये का नुकसान करा सकती है, लेकिन अपने उसूलों के पक्के गोयनकाजी लिबू-पानी मुहैया करने पर राजी नहीं हुए और हीरोइन झल्लाकर, पैर पटकती हुई अपने घर चली गयी.

"मैं इस फिल्म को आग लगा दूंगा!" गोयनकाजी ने अपनी उसूल-पसंदी का नारा लगाने के साथ कुर्सी पर से दायां घुटना उठाकर इस जोर से हवा छोड़ी कि . . . जो है सो, रहे नाम अल्लाह का!

जी हां, गोयनकाजी के विभिन्न उसूलों में से एक सुनहला उसूल यह भी था कि हर नाजुक मौके पर आप अपना दायां घुटना उठाकर बड़े विशाल हृदय से बड़े जोरों की हवा सरका देते थे और फिर आसपास बैठे हुए लोगों की ओर ऐसी प्रशंसावाचक नजरों से देखते थे मानो पूछ रहे हों कि मेरे इस परोपकार से आपकी आत्मा को कुछ शांति प्राप्त हुई!

गोयनकाजी का एक और उल्लेखनीय उसूल था—स्पष्टवादिता; जिसे वह कभी हाथ से नहीं जाने देते थे. अपनी किसी भावी बंगला फिल्म के सिलसिले में आपको हीरो की विधवा बहन के रोल के लिए किसी अभिनेत्री की तलाश थी. न जाने किस-किसके यहां जाकर आत्मा की शांति के साधन जुटा आये कि एक दिन जब इन पंक्तियों का लेखक उनके हत्थे चढ़ा हुआ था, वह बांद्रा हिल पर स्थित पुराने वक्तों की हीरोइन ऊषा किरण के यहां जा पहुंचे. ऊषा किरण और उसका डाक्टर पति खिले माथे से मिले. हमें सम्मानपूर्वक बिठाया. खिलाया-पिलाया. अपनी ढलती उम्र के बावजूद उस समय सफेद साड़ी में सज्जित ऊषा किरण बड़ी सुंदर लग रही थी. गोयनकाजी ने 'जो है सो' कहकर अपना उद्देश्य बताया, तो कैमरे की शक्ल को तरसी हुई ऊषा किरण तुरंत वह रोल करने को तैयार हो गयी.

गोयनकाजी ने रोल के अलावा यह भी पेशकश की कि अगर वे लोग शाकाहारी हों तो किसी होटल में ठहरने की बजाय बड़ी खुशी से उनके कलकत्तावाले घर में ठहर सकते हैं, मगर शाकाहारी होने की कड़ी शर्त है . . . क्योंकि उनके कुत्ते तक भी शाकाहारी हैं.

और फिर जब ऊषा किरण और उसका पति गोयनकाजी को विदा करने दरवाजे तक आये तो गोयनकाजी अपनी स्पष्टवादिता को और अधिक मन में न दबा सके तथा प्रसन्नतापूर्वक ऊषा किरण से बोले, "मैं आपको देखते ही समझ गया था कि केवल आप ही यह रोल कर सकती हैं. जो है सो, बिलकुल विधवा लगती हैं आप!"

यह तो खैर उनकी भावी बंगला फिल्म की बात थी. 'चांदी की दीवार' के सिलसिले में भी जब उन्हें हीरो की बहन की तलाश थी, तो भी वह दर्जनों अभिनेत्रियों के यहां 'जो है सो' कह और कर आये थे. एक बार पता चला कि मद्रास की किसी अभिनेत्री को अग्रिम राशि दे आये हैं. एक बार बताया कि बिजिया (विजय चौधरी) को साइन कर लिया है. उसका चेहरा पात्र से बिलकुल मेल नहीं खाता था, इसलिए साइन करने का कारण पूछा तो बोले, "कद भी ठीक है. (हीरो भारत भूषण के कद के हिसाब से नहीं अपने कद के हिसाब से) और जो

नेपाली लोक कथा

लोभी आदमी

ब्रह्माजी सारे संसार की सृष्टि करने के बाद ध्यानमग्न थे. उन्हें विश्वास था कि संसार के सभी प्राणी सुखी हैं. बहुत वर्षों के बाद उनका ध्यान भंग हुआ. तब उन्होंने सुख-दुःख के बारे में विचार-विमर्श करने के लिए सभी प्राणियों की सभा बुलायी. उस सभा में सभापति थे स्वयं ब्रह्माजी अधिकांश प्राणी सुखी ही दिख रहे थे, किंतु मनुष्य, बैल और गधे उदास थे. मनुष्य को अपनी उमर कम होने का असंतोष था, किंतु अन्य प्राणियों को अपनी उमर अधिक होने का दुःख था. अपनी ही संतान को दुःख से उदास होते देख ब्रह्माजी को अच्छा नहीं लगा. उन्होंने सभी प्राणियों को संबोधित करते हुए कहा, "मेरे सभी प्राणी सुखी रहें, इस उद्देश्य से संसार की सृष्टि की है. यदि यहां कोई दुःखी है अथवा किसी को किसी चीज की कमी है तो इस सभा में स्पष्ट कहे. मैं उसके दुःख को दूर करने का उपाय करूंगा."

साहस बटोरकर बैल ने कहा : "भगवान! हल में जुतना पड़ता है, गाड़ी को खींचना पड़ता है, बोझा ढोना पड़ता है. आधी उमर कटौती कर देते तो हमें संतोष मिलता."

ब्रह्माजी ने उठकर कहा, "यह बैल अपनी उमर अधिक कहता है, इसकी आयु में से बीस वर्ष कोई अपनी आयु में जोड़ लेता तो सभी को शांति मिलती."

संसार के सभी प्राणी अपने जीवन का महत्त्व समझ गये थे. इसलिए बैल की फाजिल बीस वर्ष की आयु कोई नहीं लेना चाहता था, किंतु मनुष्य अपनी आयु से संतुष्ट नहीं था. उसने कहा, "भगवान! अपनी आयु पशु-पक्षी के बराबर होने के कारण दुःख है. वह बीस वर्ष की आयु यदि मनुष्य को दे देते तो बहुत संतोष होता." भगवान से स्वीकृति मिल गयी. उसके बाद गधे ने भी साहस बटोरकर कहा, "भगवान! हमेशा पीटे जाने और बोझा ढोने से मेरी जिंदगी तबाह हो गयी है. इसलिए मेरी आयु से भी बीस वर्ष घटा दीजिए." उसकी आयु से भी बीस वर्ष घटाकर मनुष्य की आयु में जोड़ दिये गये. मनुष्य की आयु अब अस्सी वर्ष की हो गयी.

उसके बाद उल्लू ने प्रार्थना की, और मनुष्य ने अपनी उम्र बीस वर्ष और बढ़वा ली. इस प्रकार मनुष्य की आयु सौ वर्ष हो गयी और उसने उस समय से क्या-क्या न किया, किंतु वह इतनी उन्नति करने पर भी अपनी मात्र चालीस वर्ष की आयु स्फूर्ति के साथ बिताने में समर्थ हुआ. उसके बाद साठ वर्ष तक बैल की आयु लेने के कारण बैल की तरह उसे बोझा ढोना पड़ता है. साठ वर्ष की आयु के बाद नीरस और बोझिल आयु गधे जैसी बिताने के लिए बाध्य होना पड़ता है. अस्सी से सौ वर्ष तक की आयु अंधे, असमर्थ और आलसी की तरह बिताने के लिए अभिशप्त होना पड़ता है! □

● प्रस्तुति : रामदयाल राकेश

है सो, चटखारा लेकर बोले, "एकदम जवान है!"

कुछ दिन बाद जब बिजिया की जवानी भी रास न आयी तो चमन-दृष्टि निम्मी पर पड़ी. उन दिनों निम्मी के होने वाले पति अली रजा के भाई नब्बन मियां से मेरे दोस्ताना ताल्लुक थे, इसलिए तय पाया कि यह सौदा करा दूं. निम्मी तब आउट आफ डेट होने की देहरी पर थी, इसलिए केवल एक लाख की बात करती थी, लेकिन कंबख्त नब्बन ने गोयनकाजी के सामने कह दिया कि प्रकाशजी जो भी कह देंगे, निम्मी कबूल कर लेंगी.

कार में बैठते ही गोयनकाजी एक लाख से नब्बे हजार पर और थोड़ी दूर जाते-जाते अस्सी हजार पर उतर आये. रास्ता काफी लंबा था और मालूम होता था कि गोयनकाजी उस दिन कुछ अधिक ही पापड़ खा आये थे, क्योंकि रास्ते में इतने भाव-ताव हुए और उन्होंने मेरी आत्मा को इतनी अधिक शांति पहुंचायी कि मैं छटपटाकर चलती कार से कूद जाना चाहता था... लेकिन गोयनकाजी जैसे दूरदर्शी व्यक्ति ने कार में बैठते ही मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया था और सफर के साथ-साथ उनकी पकड़ मजबूत होती जा रही थी. हाल-बेहाल निम्मी के घर पहुंचे, "निम्मीजी अभी आती हैं, आप तशरीफ रखिए." कहकर हमें बड़े सलीके से सजे हुए ड्राइंगरूम में बिठा दिया गया.

▣

गोयनकाजी अभी तक बराबर सौदेबाजी किये जा रहे थे कि जब मामला मेरे हाथ में है (मुझे उन्होंने अभी तक अपनी पकड़ से आजाद नहीं किया था) तो पचास हजार से कम में ही तय हो जाना चाहिए. तभी निम्मी ने, जो उस समय सादगी और नारी सौंदर्य का शाहकार लग रही थी, पदार्पण करते हुए लखनवी अंदाज में हाथ माथे तक ले जाकर 'आदाब' कहा. और इसके साथ ही मैंने निश्चय कर लिया कि गोयनकाजी की खातिर मैं निम्मी से किसी तरह की सौदेबाजी नहीं करूंगा. अब गोयनकाजी कभी निम्मी की तरफ, कभी मेरी ओर देख रहे थे कि अदब-आदाब की बातें छोड़कर कब ये लोग मतलब की बात करते हैं, लेकिन जब काफी देर तक मतलब की बात शुरू न हुई तो गोयनकाजी के लिए मामला नाजुक हो गया... और फिर आप ही आप सोफे पर से उनका दायां घुटना ऊपर उठने लगा. उस शाइस्ता माहौल में उनका घुटना उठते देखकर मैं भावी दुर्घटना की कल्पना से चकरा गया और मैंने तुरंत उनका घुटना पकड़कर नीचे को दबाते हुए बौखलायी हुई आवाज में कहा, "जो है सो, गोयनकाजी! भगवान के वास्ते यहां नहीं."

कहने की जरूरत नहीं कि अब निम्मी बड़ी हैरानी से कभी उन्हें और कभी उनका घुटना दबाये हुए मेरी तरफ देख रही थी, क्योंकि उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि ... यह जो है सो, क्या हो रहा है! ▣

धारावाही उपन्यास : दूसरी किस्त

वे कौन-सी चीजें हैं और हैं कौन से मुकाम, जिन्हें हम बार-बार सिर्फ सपनों में ही देखते हैं?—इस संदर्भ में पिछले अंक में आपने पढ़ा कि पिता के मरणासन्न होने की सूचनाएं पाकर वह किस प्रकार एक उजाड़ रेलवे स्टेशन पर उतरा और अतीत की स्मृतियों में डूबता-उतरता सवारी की तलाश में सुलेमान के साथ बूढ़े इक्केवाले के यहां जा पहुंचा. अब आगे पढ़िए...

इतिवृत्त

• जगदंबा प्रसाद दीक्षित

रेखांकन : रणवीर सिंह विष्ट

सुलेमान समझा रहा है..."ई बाबू का बहुत जरूरी काम है. इनका बाप बहुत बीमार है."

बूढ़े आदमी का दम फूल रहा है. एक हाथ से इशारा करता है. चारपाई पर बैठ जाओ. मैं नहीं बैठ सकता. फिर भी बैठना पड़ता है. समय बहुत कम है. रुक-रुक कर बोल रहा है बूढ़ा आदमी... "हालत बहुत खराब है बाबू... हमारी. घोड़ी बीमार है. आव्ब जाब बारा-पंदर कोस का चक्कर हुई जाई. रात मा मुकाम होई सो अलग. दुसरे दिन लौटाई होई. हम और हमारा घोड़ा...दोनों खत्म हो जायेंगे बाबू! ...मजबूर हैं...!"

मैं टूटी चारपाई पर खामोश बैठा रहता हूं. तीनों आदमी चुप हैं. कोई रास्ता नहीं है. टूटी दीवार के पीछे बच्चों का शोर जारी है. वहीं से चिल्लाकर डांटता है बूढ़ा आदमी. ठंड सचमुच बहुत ज्यादा है. बूढ़ा और घोड़ा...दोनों मर जायेंगे. ठीक कहता है. लेकिन...अगर पैदल ही जाना है...तो चल पड़ना चाहिए. और वक्त गुजारने से फायदा नहीं. एक और खयाल आता है इसी समय. मैं उठते-उठते रुक जाता हूं. बूढ़ा सुलेमान को अपनी जिंदगी की कहानी सुना रहा है...छाती की बीमारी है. कस्बे के अस्पताल से ला-लाकर कितनी दवाइयां खायीं. कोई फायदा नहीं हुआ. डाक्टर लोग...अस्पताल वाले... सब हरामखोर हैं. ऐसा अंधेर कि पूछो मत. सब अच्छी-अच्छी दवाइयां बेच डालते हैं. दवा के नाम पर पानी. अल्ला का कहर...थू थू! ऊपर से लेकर नीचे तक...सब अपना पेट भरने वाले. गरीब की सुनने वाला कोई नहीं...

हांफकर चुप हो जाता है. अब मेरा बोलना जरूरी है. मैं कहता हूं, "बड़े मियां! न हो तो मुझे कस्बे तक ही छोड़

दो. आगे कुछ और मिल जायेगा. नहीं मिलेगा तो पैदल ही चला जाऊंगा. . .पांच रुपये दूंगा तुमको. . .!"

सब लोग एकदम चुप हो गये हैं. सुलेमान मेरा मुंह देख रहा है. मैं फिर कहता हूं, "पांच दूंगा. . .खाली बस्ती तक छोड़ देना. आगे मैं आप चला जाऊंगा."

मुझे लग रहा है कि मैं एक गलत काम कर रहा हूं. दुनिया के इस कोने में पांच रुपये बहुत ज्यादा हैं. बूढ़ा पांच रुपये नहीं ठुकरा सकता. किसी तरह नहीं. पांच रुपये के लिए शायद जान की भी परवाह नहीं करेगा. मगर मेरे लिए ऐसा गलत काम जरूरी है. मैं पांच रुपये की बात फिर एक बार करना चाहता हूं.

लेकिन बूढ़ा सुलेमान से पूछ रहा है. या शायद अपने-आप से पूछ रहा है— "का कहत हो?. . .चले जायें? अबही दुई घंटा मां लउट आवेंगे. . ."

सुलेमान चुप है. शायद कहना चाहता है—नहीं, मत जाओ. मगर कह नहीं पा रहा है. कहना जरूरी है. सुलेमान कहता है, "हम का कहें बड़े मियां! जइसी तबीयत हो वइसा काम करो!". . .

लेकिन फैसला कर लिया है बड़े मियां ने. आवाज देता है, "सलमा ! जरा चाह बनाओ बिटिया! जल्दी!. . .नूरे! कहां गा नूरे! हियां आ रे! इक्का जोत जल्दी से." फिर सुलेमान से कहता है, "दुई घंटा . . .जादा टैम नहीं लगेगा. . . इंसा अल्ला!"

बूढ़े हसन के जिस्म में अचानक ही गरमी आ गयी है. अंदर खबर पहुंच गयी है. पांच रुपये. जल्दी-जल्दी हो रहे हैं सब काम. नूरे आ गया है. दस साल का लड़का. नयी घास डालता है घोड़े के सामने. इक्का तैयार हो रहा है. सुलेमान जा रहा है. जमीन पर बैठकर बूढ़ा अपनी कहानी सुना रहा है—"ये लड़का नूरे. . .हमारा नाती है. . .बेटी का बेटा. दुई बिटिया अउर हैं. . .हमरी नतिनें. . .बिटिया की बिटिया. चार साल गये. . .हमारी लड़की जाती रही. जल के मरी. कोऊ-कोऊ कहते हैं. . . .खुदै आग लगा लिहिस. तब ते ये बच्चा लोग हमरे पासै रहत हैं. इनका बाप दूसर निकाह कर लिहिस. . .मुकद्दर का खेल है सब. . . .अपना खून है. . . .कइसे छोड़ दें!. . .ऊपर से बीमारी. एक आदमी कमाय वाला अउर चार खाय वाले. का कहें. जब ते होस सम्हाला . . .यहै किस्सा चल रहा है. अइसा चल रहा है कि खतमै नहीं होत. . . .जल्दी कर बेटा. बाबू का जल्दी जाना है. . ."

. . .अब सफर शुरू हो गया है. . .और कहानी अब भी जारी है. . . "हम बीमार . . .घोड़ा बीमार. बीमारी का है? सबसे बड़ी बीमारी है गरीबी. . . .चल बेटा. . .चल! हौले चल. . .मुला चल जरूर. . . ."

खांसी का दौरा पड़ता है. बूढ़ा खांसता है. बुरी तरह खांसता जाता है. सारे फेफड़े बाहर आ जायेंगे. थूकता है.

लेकिन हर कदम पर मुझे डर लग रहा है. घोड़ा गिर जायेगा. . . या बूढ़ा आदमी गिर जायेगा. घोड़े की थूथन पर

फिचकुर दिखायी देता है. बूढ़ा आदमी थूकता चला जाता है. हम लोगों ने खंडहरों की बस्ती को पीछे छोड़ दिया है. रेलवे लाइन पीछे दूर होती जा रही है. हरगंज रोड स्टेशन की इमारत अब दिखायी नहीं देती. सामने एक ऊंचा टीला है. घोड़े का हांफना बढ़ गया है. मालिक कभी डांटता है. . . कभी पुचकारता है. . .कभी खुद दम लेता है. अपनी कहानी कहता चला जाता है. . . "रेलवे. . .हमरे सामने आयी है बाबू. पहिले हियां कहां रेलवे अउर कहां इसटेसन. . .रेलवे आयी. . .तो कउन हम लोगन के वास्ते आयी. सक्कर की मील बनी, वही के वास्ते रेलवे आयी. . .चल बेटा. . . धीरे-धीरे. अइसे ही बातचीत मां रस्ता कट जाई."

टीले की तरफ का रास्ता कंकरीला हो गया है. ऊपर मिट्टी है, अंदर पत्थर हैं. कभी-कभी मिट्टी के ऊपर उभरे हुए पत्थर आ जाते हैं. घोड़ा जोर लगाकर खींचता है. बूढ़ा चाबुक की एड़ लगाता है. पहिया गुजर जाता है.

मैं कहानी सुनता जाता हूं. . .या नहीं सुनता. डूबती हुई शाम को देखता हूं. उजाला टीलों और पेड़ों के पीछे कहीं गायब हो गया है. चारों तरफ से घिरने लगा है अंधेरा. मैं वहां कब पहुंचूंगा? जब सब कुछ खत्म हो गया होगा. . . या हो रहा होगा. तब हम सबके लिए सिर्फ यही बाकी रह जायेगा कि हम पुरानी बातों के बारे में सोचें.

अब भी. . .जब इक्के का पुराना पहिया धीरे-धीरे गुजर रहा है और बूढ़े आदमी की कहानी जारी है. . .मेरी आंखों के सामने सिर्फ पुराने दिन गुजरते जा रहे हैं, इन दिनों को मैं करीब-करीब भूल चुका था. लेकिन एक आदमी के गुजर जाने के खयाल से ये दिन फिर लौटने लगे हैं. . .कौन है यह आदमी? या सिर्फ एक मनीऑर्डर है, जो कभी आता है. . . कभी नहीं आता है? कभी चिट्ठियां आती हैं. . .कभी नहीं आतीं. नौकरी है. आजकल नौकरी नहीं है. छुट्टी मिलने वाली है. राजी-खुशी. . .ईश्वर से नेक चाहते हैं. . .जैसे ही छुट्टी मिली. . .आयेंगे. . .और हम दो-तीन बच्चे कच्ची जमीन पर लेटे हुए हैं. रात का अंधेरा घिरा हुआ है. हम अपनी मां से सट जाने की कोशिश कर रहे हैं. . .और मां लगातार अंधेरे की तरफ देख रही है. कहानियां सुनाने की कोशिश करती है. बीच के समय में कभी आ जाता है यह आदमी. . .हमारा बाप. . .साल या डेढ़ साल में. . .दस या पंद्रह दिन के लिए. बहुत जल्द ये दिन खत्म हो जाते हैं. हम इस आदमी को रोकना चाहते हैं, लेकिन इसे जाने से कोई रोक नहीं सकता. क्योंकि मनीऑर्डरों का आना जरूरी है. बहुत छोटे-छोटे मनीऑर्डर. . .बीस या पच्चीस रुपयों के. इसलिए फिर साल-डेढ़ साल सिर्फ चिट्ठियां और कुछ नहीं . . .सब अच्छे हैं. . .कुशलता, ईश्वर से नेक चाहते हैं. रुपये मिल गये. . .रुपये भेज दिये हैं. छुट्टी मिल भी गयी तो आना मुश्किल है. आने-जाने में खर्च बहुत होता है. खैर, आगे ईश्वर की मरजी. फकत.

अचानक मेरा रोना जरूरी हो जाता है. अंदर एक मशीन है. अपने-आप आंसू टपकाती चली जायेगी. ये आंसू गुजरते हुए रास्ते पर गिरकर खो जायेंगे. बूढ़ा इक्केवाला जान नहीं पायेगा. कहानी सुनाता चला जायेगा. कहां आ गये हैं हम लोग? एक और चढ़ाव के पास. घोड़ा अब फिर हांफ रहा है. जबड़े के दोनों तरफ फिर वही झाग. बूढ़ा जोश दिला रहा है. . ."बस बेटा! थोड़ा अउर है. . .उतराई शुरू हो जायेगी. बस्ती तक उतराई ही उतराई है. चल बेटा. . . धीरे-धीरे चल. . .तो अइस है बाबू. एक तो गरीबी. . .ऊपर ते बुढ़ापा. जिसम जवाब दे रहा है. मुला काम न करें तो खांय कहां ते. . .काम धरा कहां है. हमार बड़ा लड़िका है . . .बेकार पड़ा रहत है. बीच-बीच में लैन का काम मिल जात है. दुई कोस जात है. . .दुई कोस आवत है . . .चार कोस. बड़े तड़के निकल जात है. . .बड़ी रात का लउटता है. तीन रुपया रोज पावत है. का होत है तीन रुपैया मां. रुपैया तो चाह-पानी बीड़ी-तमाखू मां उड़ि जात है. . . .चल बेटा, चलत जा. थोड़ा अउर है. . ."

फटे कंबल को कसकर लपेट लेता है. जाने कब जला ली थी एक बीड़ी. दम लेकर खांसता है—"सुनते हैं. . .सहर मां अच्छी मजूरी मिल जात है. . .काहे बाबू?"

मैं चुप हूं. . .हां. शहर में मजदूरी अच्छी मिलती है. हम लोग उसी मजदूरी पर जिंदा हैं. उसी मजदूरी के मनीऑर्डर भेजते रहते हैं. हमारे पास घर नहीं. . .जिंदगी नहीं. . . सिर्फ मजदूरी है. मैं चुप हूं. मेरी बात बूढ़े की समझ में नहीं आयेगी. वह समझता है, मैंने उसकी बात सुनी नहीं. फिर कहता है, "सहर मां तो तलब अच्छी मिलत है. . ."

मैं उसे समझाने की कोशिश करता हूं, "शहर में महंगाई बहुत है. . .सब बराबर हो जाता है. . .रहने को घर नहीं. . . .ठिकाना नहीं. . ."

लेकिन बूढ़े का ध्यान इन बातों की तरफ नहीं है. वह सिर्फ मजदूरी समझता है. कहता है, "जइसे. . .यू सामने जौन बिरवा है न. . .पेड़. यहि की एक डंगाल काटें. . . तो सहर मां कितनी मूजरी मिलेगी. . .?"

मुझे उसके सवाल में भोलापन दिखायी देता है. मैं उसे समझा नहीं सकता. इसलिए मैं कहता हूं, "इसकी मजूरी. . . यही कोई आठ-दस रुपिया. . .मगर शहर में लकड़ी काटने का काम नहीं होता है बड़े मियां. . ."

लेकिन बड़े मियां सिर्फ रुपये की बात सुन पाते हैं, अचानक कहते हैं, "जो हमको हियां आठ दस रुपैया मिलैं. . .तो अल्ला कसम. . .हम पूरा बिरवा काट के रख दें!. . ."

इस समय घोड़ा रुक गया है. आगे नहीं बढ़ता. मालिक पुचकार रहा है. . .समझा रहा है. . .प्यार कर रहा है. लेकिन घोड़ा उसी तरह खड़ा है. हांफ रहा है. इस ठंड में भी पसीने से तर .

अब बूढ़ा नीचे उतर गया है. हाथ फेर रहा है प्यार से. सारा बदन सहला रहा है. लेकिन घोड़ा नहीं हिलता अपनी जगह से. रात घिर रही है. सिर्फ आधा रास्ता तय हुआ है. पांच रुपये का सवाल. अब बूढ़ा नाराज हो रहा है. घोड़े को लगाम से पकड़कर खींचता है. घोड़ा आगे नहीं बढ़ता. . .

मैं घोड़े को देख रहा हूं. एक और बूढ़ा. . .थका हुआ. . . हार गया है. पसीने में डूबा. . .जिंदगी के बोझ को उठाकर चल नहीं पा रहा है. अगले घुटनों को टिकाकर वहीं बैठ गया है. बूढ़े मालिक की सारी कोशिशें बेकार हो गयी हैं. गालियां दे रहा है जोर-जोर से. खांसी का रेला उठता है. गालियां डूब जाती हैं. घोड़ा नहीं उठता. बूढ़ा आदमी अचानक फटे कंबल को उठाकर फेंक देता है. पीटना शुरू कर देता है उलटी चाबुक से. पीटता जा रहा है लेकिन घोड़ा नहीं उठता. मैं इक्के से उतरकर अलग खड़ा हो जाता हूं. यह नहीं हो सकेगा शायद. बाकी रास्ता पैदल तय करना होगा. मैं बूढ़े को समझाता हूं, "नहीं. . .जाने दो. मैं पैदल चला जाता हूं."

मेरी बात सुनकर और नाराज हो जाता है बूढ़ा आदमी. "यहि की मैया की. . .जायेगा कइसे नहीं. यहि का बाप जायेगा. अबहीं जायेगा. . . ."

अब बेतहाशा पीट रहा है बूढ़ा आदमी एक बूढ़े घोड़े को. दोनों एक टूटते हुए किनारे पर खड़े हैं. दोनों गिर जायेंगे. लेकिन बूढ़ा आदमी पीटता जायेगा. जिंदगी का दर्द. . . जिंदगी की नफरत. . .घुटन. . .सब कुछ निकाल डालेगा घोड़े पर. लेकिन घोड़ा भी सब कुछ निकाल देगा. पिटता जायेगा और नहीं उठेगा. . .और मैं चुपचाप देखता रहूंगा.

शायद वक्त आ गया है कि मैं अपनी जेब से निकालकर कुछ पैसे बूढ़े के हाथ में थमा दूं और आगे बढ़ जाऊं. लेकिन टीले की पगडंडी पर कोई चल रहा है. हलके अंधेरे में पहचानना मुश्किल है. अब ये छायाएं धीरे-धीरे सामने आती हैं और दूसरी तरफ से गुजर जाना चाहती हैं. बूढ़ा आवाज देता है, "कउन है रे?. . .जरा हियां आ तो. . ."

छायाएं धीरे-धीरे नजदीक आ जाती हैं. मैं अपने सामने दो अधनंगे आदमियों को देखता हूं. इनके सिर पर लकड़ियों के गट्ठर हैं. ये लोग डरे हुए हैं. शायद लकड़ियां कहीं से चुराकर ला रहे हैं.

"कउन गांव?" बूढ़ा पूछ रहा है.

छायाएं हिचकिचा रही हैं.

"कउन गांव?"

"झरखेड़ा. . . ."

"जरा हाथ लगाओ. हमार घोड़ा अड़ गवा है. . . ."

घिरते अंधेरे में दोनों मेरी तरफ देखते हैं. लकड़ियों के गट्ठर डाल देते हैं. . .घोड़े को उठाने की कोशिश करते हैं.

बूढ़ा घोड़ा अब उठ रहा है धीरे-धीरे. बूढ़े आदमी का गुस्सा खत्म हो गया है. बहुत प्यार से सहला रहा है घोड़े को. मुझे लगता है कि जैसे माफी मांग रहा है.

"अच्छा दादा! राम राम." लकड़ीवाले जा रहे हैं.

"सलाम बेटा. ले. . . .बीड़ी पी ले. . . ."

बीड़ियां जलती हैं. बूढ़ा पूछता है, "केहि के बाग की लकड़ी है ये?"

लकड़ीवाले चुप हैं. लेकिन एक बोल उठता है, "अब का बताएं दादा! जौन दिन पकड़ लेते हैं. . .अइसी हालत करते हैं कि कुछ पूछो ना. . . .चलित है. सलाम."

तिब्बती लोक कथा

दो पड़ोसी

चांबा के घर के दरवाजे पर चिड़ियों ने घोंसला बनाया. अंडे दिये. बच्चे निकले. एक दिन जब चिड़ा और चिड़िया बच्चों के लिए खुराक लाने के लिए कहीं गये हुए थे तो एक बच्चा नीचे गिर पड़ा और उसकी एक टांग टूट गयी. चांबा ने घर आने पर उसे देखा. उठाया. उसकी टूटी हुई टांग को कपड़े की धज्जी से लपेटा और मरहम लगाकर घोंसले में बिठा दिया.

चिड़िया का यही बच्चा जब बड़ा हुआ, तो उसने चांबा का उपकार उतारने की ठान ली. अतः एक सुबह जब चांबा घर में बैठा हुआ था, वह चोंच में चावल का एक दाना लिये हुए आया और चांबा के सामने रख कर बोला, यह चावल का दाना तुम्हारे उपकार का बदला है, जो तुमने मेरी टूटी हुई टांग जोड़कर मुझ पर किया था. इसे बो दो और इसका परिणाम देखो."

उसने चावल का वह दाना अपने घर के सामने आंगन में बो दिया और जल्दी ही इस बारे में उसे कोई बात याद न रही. एक सुबह यह देखकर चांबा के विस्मय की सीमा न रही कि पौधे पर सिट्टों की बजाय सोना और जवाहरात लहलहा रहे हैं. अब उस पर पंछी के उपहार की वास्तविकता खुली. उसने सारे जवाहरात बेच दिये. और अब वह धनवानों जैसा जीवन बिता सकता था.

चांबा की आर्थिक स्थिति में एकदम क्रांति आ जाने से ईर्ष्यालु पड़ोसी जेरिंग को बड़ा आश्चर्य हुआ. जेरिंग एक दिन चांबा के घर गया और पूछने लगा, आखिर तुम्हें इतना धन कहां से हाथ आ लगा? चांबा ने उसे चिड़िया की टूटी टांग और चावल के दाने की पूरी कहानी सुना डाली.

जेरिंग की खुशकिस्मती कि उसके घर के दरवाजे पर भी चिड़ियों ने घोंसला बना रखा था और घोंसलें में से बच्चों के चहचहाने की आवाजें आ रही थीं. जेरिंग ने आव देखा न ताव, सीढ़ी ली, घोंसले में से एक बच्चा निकाला और उसे जमीन पर गिरा दिया. बेचारे की टांग टूट गयी. फिर जेरिंग ने बच्चे की टूटी टांग पर मरहम लगायी. कपड़े की धज्जी ऊपर बांध दी. . .और उसे घोंसले में रख दिया.

कुछ समय बीतने के बाद जेरिंग के पास भी एक चिड़ा आया. उसने भी जेरिंग को उसके उपहार के बदले में चावल का एक दाना दिया और बोने को कहा. जेरिंग ने अपने आंगन में बड़ी होशियारी से चावल का दाना बो दिया और प्रतीक्षा करने लगा. एक सुबह यह देखकर उसके विस्मय की सीमा न रही कि चावल के पौधे के बजाय वहां एक आदमी खड़ा था, जिसने बगल में कुछ दस्तावेज दबा रखे थे. जेरिंग ने घबराकर पूछा कि वह कौन है! जवाब में अजनबी कहने लगा, "तुम अपने पिछले जन्म के मेरे कर्जदार थे. तुमने मुझसे जितना धन लिया था, उसकी रसीदें मेरे पास हैं. अब मुझे मेरा पैसा लौटा दो.

बेचारे जेरिंग को अपनी सारी जायदाद अजनबी को दे देनी पड़ी. □

प्रस्तुति : सुरजीत

वे आगे बढ़ जाते हैं. हम फिर बैठ गये हैं इक्के पर. घोड़ा चलने लगता है धीरे-धीरे. बूढ़ा फिर बोलना शुरू कर देता है, "आठ-बारा आना बाबू. . .जादा नहीं. एक गटठा का जादा में जादा बस यहै दाम है. यहि के लिए दुई कोस चल के आते हैं और बेच के फिर उलट जाते हैं. . . डेढ़-डोम हैं. . . .नीची जातवाले. काम-धंधा कुछो है नहीं. बस लकड़ी चुराय-चुराय के बेचते हैं. जौने दिन पकड़े जाते हैं. . . .ठाकुर लोग मार-मार के भरता कर देते हैं. पर करें क्या. फिर वहै काम करते हैं."

सफर फिर शुरू हो गया है. बढ़ते हुए अंधेरे में धीरे-धीरे बढ़ रहा है घोड़ा. बूढ़े की बीड़ी रह-रहकर तेज हो उठती है. पुचकारता जाता है घोड़े को. खामोशी का सफर है चारों तरफ.

लेकिन चढ़ान अब भी खत्म नहीं हुई. बूढ़ा घोड़ा चलता है. . . .रुक जाता है. . . .फिर चलता है. बूढ़ा आदमी फिर नाराज हो रहा है. बीच-बीच में चाबुक मार देता है. घोड़ा पिटता जाता है और घिसटता जाता है. पूरा इक्का घिसट रहा है. अब कोई नहीं कुछ बोलता. बूढ़े आदमी की कहानियां खत्म हो गयी हैं. . .

टीले के गुजरने के बाद दूसरी तरफ चिराग दिखायी देते हैं. यही बस्ती है . . . .कस्बा हरगंज.

सर्दी अभी से बहुत है. जब पूरी रात हो जायेगी, तब क्या होगा? मैं कहता हूं, "लौटते-लौटते बहुत रात हो जायेगी बड़े मियां. . . ."

बूढ़ा आदमी अंधेरे में जैसे एक लंबी सांस खींचता है, "ना. . .अब हिम्मत नहीं है. कहूं इक्का खड़ा करेंगे अउर सो जायेंगे. घोड़ा बस्ती तक पहुंचा दे. . . .यहै बहुत है." अचानक मुझसे पूछता है, "पर तुम का करोगे बाबू? पइदल जाओगे आगे?"

अब भी पिट रहा है घोड़ा. अब बस्ती तक पिटता हुआ ही जायेगा. मैं चुप हूं. इस सवाल का जवाब मुझे मालूम नहीं. बोल रहा है बूढ़ा, "एक काम करना बाबू. . . .पइदल मत

जाना. रात-बिरात का बखत है. जमाना ठीक नहीं है. . ."

लेकिन मैं बूढ़े की बात मानने के लिए तैयार नहीं हूं. समय का हर पल बहुत मुश्किल है, क्योंकि इसके बाद हम लोग बार-बार एक गुजरे हुए आदमी को देखना चाहेंगे, लेकिन देख नहीं सकेंगे. बस, तस्वीरें रह जायेंगी. शायद एक आवाज रह जायेगी. इसके बाद रोना जरूरी हो जायेगा. डूबती आवाज में मैं कहता हूं, "जाना पड़ेगा. . . रात-बिरात होने से रुक नहीं सकता. यह टाइम फिर नहीं मिलेगा. . !"

अंधेरे में हम एक-दूसरे को देख नहीं सकते. लेकिन आवाज का कांप जाना छिप नहीं सकता. बूढ़ा आदमी कहता है, "बाबू! . . . .उस पर भरोसा रखो. सब ठीक हो जायेगा."

मैं अंधेरे में देखता हूं. . .बूढ़े आदमी की उंगली ऊपर उठी हुई है. . . .उस पर भरोसा रखना जरूरी है. . .खांसी का दौर शुरू हो जाता है. बूढ़ा खांसता चला जाता है. . .

यहां से कुछ दूर एक आदमी ने शायद खांसना बंद कर दिया है. घिसटना खत्म हो गया है और वह हमेशा के लिए सो गया है. हम सब अब भी डरे हुए हैं. इसी तरह ऊपर की तरफ देखते हुए. . .हांफते और खांसते हुए एक दिन हम भी अपना सफर खत्म कर देंगे.

मुझे फिर लगता है कि जिंदगी काफी छोटी पड़ गयी है. हम सिर्फ सोचते रहे. ऐसे दिन का इंतजार करते रहे, जब हम जरूर एक-दूसरे के लिए कुछ कर सकेंगे. जो सारी जिंदगी घिसटते रहे हैं, उन्हें एक बेहतर जिंदगी दे सकेंगे. इन घिसटते हुए लोगों ने हमें एक बेहतर जिंदगी देने की कोशिश की. . . .और हार गये. लेकिन हमारे दिलों में कहीं यह भरोसा था कि हम हारेंगे नहीं. हम उन्हें जरूर सहारा देंगे जिन्हें उम्र, बीमारी और जिंदगी ने तोड़ दिया है. लेकिन अचानक सब खत्म हो गया. जिंदगी अचानक बहुत छोटी पड़ गयी. हमें एक-दूसरे से बात करने का समय नहीं मिला. हम बोलना चाहते थे. . . .बोल नहीं सके. हम बताना चाहते थे कि हमारे दिलों में दर्द है और प्यार है. यह दर्द और प्यार उनके लिए है जो हमेशा हमसे दूर रहे. इस दर्द को हम कह नहीं सके. . . .खतों में लिखकर बता नहीं सके. इसलिए हम इसी तरह जिंदा रहे. मां. . . .बाप. . . भाई. . . .भाभी. . .बहन. . . .सब रिश्ते-नाते उस तरह कायम रहे. हम जैसे-जैसे बड़े होते गये. . .एक दूसरे के लिए अजनबी बनते चले गये. लेकिन फिर हम अजनबी भी नहीं रहे. हमें एक-दूसरे से नफरत हो गयी. हमने सिर्फ अपनी हदों को पहचाना. . . .अपनी मजबूरियों को समझा. हम नहीं समझ सके कि मजबूरियों की ये हदें सभी को घेरे हुए हैं. अपनी मजबूरियों के लिए हम एक-दूसरे को जिम्मेदार ठहराते रहे. हमने समझा कि दूसरा आदमी स्वार्थी और खुदगर्ज है. हदों ने सिर्फ हमें बांध रखा है. औरों ने दिखावे के लिए हदें ओढ़ ली हैं. इस तरह हमने मान लिया कि हमें एक-दूसरे से नफरत हो गयी है.

लेकिन अब जिंदगी प्यार और नफरत दोनों के लिए छोटी पड़ गयी है. मैं एक अंधेरे ऊबड़-खाबड़ रास्ते से गुजर रहा हूं. . . .और बेचैन हूं. . .उस आदमी से मिलने के लिए जो सभी अंधेरों और सभी उजालों के पार जा रहा है. . . या जा चुका है. नफरत भी अगर मेरे काम आ जाती. . .तो मेरा छुटकारा हो जाता. मेरे लिए अब एक ही चीज बाकी है. मुझे उस पर भरोसा रखना है, जिसकी तरफ एक बूढ़े, खांसते हुए आदमी की उंगली उठी हुई है.

लेकिन ऐसा नहीं हो सकता. मैं चुप हूं. सिर्फ देख रहा हूं कि हम बस्ती के उजालों के बहुत पास आ गये हैं. खांसी का दौर खत्म हो चुका है. बूढ़ा आदमी कह रहा है, "पइदल मत जाना. . . .बस्ती लांघ के बहि पार चले जाना. हुआं गुजरी बजार है. हुआं ते सड़क जाती है. . .बालापुर. . . अउर आगे. हुआं सरकारी कामौ चलत है. सरकारी जीप लारी आवत-जात रहत हैं. कुछौ न कुछौ जरूर मिल जायेगा. हाथ उठाके रोक लेना. रुपिया . . .दुई रुपिया जौन मांगे दै देना. पइदल मत जाना अल्ला सब ठीक करी. . ."

बूढ़े आदमी की कहानी अब फिर शुरू हो गयी है. . . "कइसा-कइसा टैम आवा बाबू. . . .का बतायें. मगर मालिक सब पार कर दिहिस. एक टैम अइसा था बाबू. . . .कि हमारा यू घोड़ा अइसा बीमार पड़ा कि अब गा अउर तब गा. यहै तो हमारी रोटी-रोजी है. . . .मगर मालिक का फजल. . ."

इन कहानियों में कोई नयी बात नहीं है. आदमी हो या घोड़ा. . .एक नाम की जगह दूसरा नाम. . . बाकी सब वही. . . .भूख. . . .बीमारी. . . .गरीबी. . .बुढ़ापा. . .मौत. लेकिन फिर भी कोई है. उस पर भरोसा रखना जरूरी है. फिर हमने ही क्यों ऐसा किया? हम लोग. . . .जो बिखरे हुए थे. . . .प्यार और नफरत से जुड़े हुए थे. . .क्यों हमने समझ लिया कि सब कुछ हमेशा इसी तरह कायम रहेगा? जो जहां है. . . .वह हमेशा वहीं रहेगा? हममें से कोई अपनी यात्रा के आखिरी सिरे पर नहीं पहुंचेगा? और इसके बाद कहीं से एक वक्त आ जायेगा जो सब कुछ ठीक कर देगा. हम सबको एक रास्ता मिल जायेगा. हम जो बोलकर या लिखकर नहीं बता सके. . . .तब बता सकेंगे. बता सकेंगे कि हमारे आसपास जो लकीरें थीं. . . वे सिर्फ हमारी मजबूरियां थीं. इन मबूरियों को तोड़कर अब हम लौट आये हैं. स्वार्थी और खुदगर्ज कोई नहीं था. हम सिर्फ बंधे हुए थे. . . यह सब सोचने की गलती हमने क्यों की? हमने क्यों समझा कि कहानियां शुरू होती हैं तो खत्म भी हो जाती हैं? सवाल उठते हैं तो हल भी हो जाते हैं? कि हर चीज हमारे देखते-देखते एक नतीजे पर पहुंच जाती है? हमने क्यों नहीं सोचा कि यहां अचानक सब कुछ बीच में ही छूट जाता है? कहानियां अधूरी रह जाती हैं. हम किसी नतीजे तक पहुंच नहीं पाते. . . .और अब बहुत देर हो चुकी है. मेरी जेब में पड़े दो टेलीग्राम इस देर की गवाही दे रहे हैं. . . . क्रमशः

—अगले अंक में—

जिंदगी के मोह और जिंदा रहने की ऊहापोह में आखिर हम किसी नतीजे पर क्यों नहीं पहुंच पाते?. . .

बंगाल की हरियाली और नदी-नालों से घिरा हुआ यह गांव नबी नगर के नाम से प्रसिद्ध था. जनाब अली इसी गांव का रहने वाला था. खाते-पीते घरों में मेहनत-मजदूरी करके पेट पालता. दिन भर के परिश्रम के बाद खाना और एकाध रुपया नकदी के रूप में मिल जाता तो फूला न समाता. घर में कोई रिश्तेदार था नहीं, अकेली जान—आगे नाथ, न पीछे पगहा. शादी-ब्याह का प्रश्न ही पैदा न होता था. उसे भला कौन अपनी लड़की देता.

एक दिन वह खान साहब के घर गया. खान साहब के रसोईघर का छप्पर सिखक गया था. उसे फिर से बांधने की मजदूरी मिली थी. जनाब अली के सिवा सस्ती मजदूरी पर कोई तैयार न हुआ. वह सवेरे सवेरे ही काम पर जा लगा. एक पहर दिन बीतने तक अच्छा-खासा काम कर चुका था और भूख भी जोरों पर थी. वह छत से उतरा और नाश्ता मांगा. घर की मालकिन ने अपनी बेटी से कहा, "अमीना! मेरा हाथ आटे में फंसा हुआ है. जा, जरा जनाब अली को रात का बचा हुआ भात दे आ. और सुन, छींके में से एक प्याज और दो कच्ची मिर्चें भी दे आना."

अमीना की उमर ही ऐसी थी कि वह कुछ शरमाती हुई आयी और कांसे की थाली में रात का बचा हुआ भात और एक मैले-कुचैले गिलास में पानी लेकर जनाब अली के सामने रख दिया. जनाब अली अमीना को बचपन से देखता आया था और शरमाने का कोई कारण न था. उसने कहा, "दीदी! क्या रात का बचा हुआ सालन भी मिल जायेगा?"

"एक दिन और एक रात उसी जगह पड़े पड़े जनाब अली इस दुनिया से विदा हो गया. यों तो हर आदमी इस दुनिया में अकेला आता है और अकेला चला जाता है, पर जनाब अली तो यहां रहा भी अकेला ही."

बांग्ला देश के एक निपट अकेले गंवई मजदूर की कारुणिक कथा

एक अकेला दिन

◘ मोइनुद्दीन

अमीना चुप रही, पर उसकी मां ने रसोईघर से ही कहा, "सालन तो नहीं है. इसी तरह खा ले."

जनाब अली चुपचाप खाने लगा. अमीना लौट गयी. कुछ मिनट बाद जनाब अली ने पदचाप सुनी. अमीना ने एक प्याला उसके सामने रख दिया. उसमें मछली और बैंगन का सालन था. जनाब अली ने अमीना की ओर देखा और मुस्करा दिया. कितनी अच्छी थी अमीना. कैसी मोहनी-सी, कितनी हमदर्द! उसके अंधेरे दिल में प्यार और लगन की जोत जल उठी. दोपहर तक वह काम करता रहा. फिर उसे गर्मी महसूस हुई और वह नहाने के लिए नदी पर जाने लगा. अमीना की मां ने कहा, "ए जनाब अली, घड़ा लेता जा और पानी भर ला. आज पानी की कमी है और अमीना को नहाना है."

जनाब अली हंस दिया. वह हर बात पर हंस पड़ता है. यह हंसी उसका सबसे बड़ा सहारा था. बचपन से अब तक प्रेम से वंचित एक अकेले इंसान के लिए अपने दुखों को छिपाने का सबसे बड़ा सहारा. यदि वह बात-बात पर हंसता नहीं तो शायद अब तक पागल हो चुका होता.

उसने एक की बजाय दो घड़े उठाये और नदी की ओर चल दिया. आध घंटे बाद लौटा तो एक घड़ा कंधे पर था और दूसरा हाथ में. अमीना की मां बोली, "जनाब अली! तू भी कैसा पागल है. नदी पास ही तो है. दो फेरे कर लेता. एक ही बार दो घड़े लाने की क्या जरूरत थी."

जनाब अली लज्जित-सा हो गया, बोला, "अम्माजी! दीदी एक घड़े से कैसे नहाती?"

अमीना अंदर बैठी पान बना रही थी. जनाब अली के मुख से अपना नाम सुनकर उसका दिल धड़कने लगा. फिर स्वयं को संभालकर ऊंची आवाज में बोली, "ए जनाब अली! दोनों घड़े आंगन में क्यों रख दिये. मैं गुसलखाने तक कैसे ले जाऊंगी?" आंगन ही के दूसरे कोने में पटसन के टटिये से बनी हुई दीवार के पीछे गुसलखाना था. लकड़ी की एक छोटी-सी चौकी और कपड़े टांगने का बांस का स्टैंड. जनाब अली दोनों घड़े वहां रख आया.

दूसरे दिन वह छत पर काम में लगा हुआ था कि सुतली का गोला उसके हाथ से छूट गया. अमीना आंगन में बैठी थी. जनाब अली ने कहा, "दीदी! जरा यह रस्सी उठा दो."

अमीना मुस्करायी और सुतली का गुच्छा उठाकर उसकी ओर फेंक दिया. दोनों कलाइयों में पहनी हुई चूड़ियां खनक उठीं और आंचल खिसकने से सुडौल बांह नंगी हो गयी. जनाब अली उसे देखकर ठगा-सा रह गया. अमीना भी शरमा गयी और जल्दी से उठकर अंदर चली गयी.

तीसरे दिन जनाब अली ने काम समाप्त कर लिया. मजदूरी के पैसे लेकर जाने लगा तो अमीना ने कहा, "जनाब अली! जरा ठहरो. अभी जाते ही तुम्हें खाने को मिलने से रहा. लो, यह गुड़ की मूढ़ी लेते जाओ." जनाब अली का दिल खुशी से झूम उठा.

अमीना के पिता शहर में नौकरी करते थे. हर महीने कुछ रुपये घर भेजते. थोड़ी-सी जमीन भी थी, जो बटाई पर दे रखी थी. कई बार बटाई वाले फसल देर से उठाते या अन्न न भेजते, तो जनाब अली को ही उनकी ओर भेजा जाता. इन्हीं दिनों अमीना के यहां चावल खत्म हो गया. रोज की तरह जनाब अली को बुलवाया गया और अमीना की मां ने उसे बटाई वालों से चावल लाने को कहा.

कोई दो घंटे बाद जनाब अली हांफता-कांपता कंधे पर चावल की बोरी उठाये वापस आ गया. रास्ते से वह धान छड़वा भी लाया था. अमीना ने उसके चेहरे से पसीने की धार फूटते देखी तो बोली, "जनाब भाई, पानी लाऊं?"

जनाब अली की सारी थकान जैसे गायब हो गयी. वह हंस दिया. मिट्टी के घड़े से शीशे में पानी उंडेलती हुई अमीना को सहसा महसूस हुआ, मां सिर पर खड़ी है. उसने सिर उठाया. मां कह रही थी, "ए लड़की! पागल हुई है क्या! जनाब अली को इस गिलास में पानी देगी?"

जनाब अली जैसे गरीब इंसान के लिए अमीना की हमदर्दी को उसकी मां ने अच्छी नजर से नहीं देखा. और उसी शुक्रवार को अमीना का बाप आया तो उस पर जोर दिया कि बेटी की शादी जल्दी होनी चाहिए. कुछ महीने बाद बहुत देखभाल के बाद अजीम नगर के चौधरी घराने का लड़का पसंद आया शादी की तारीख निश्चित कर दी गयी.

◘

शादी से कुछ दिन पहले जनाब अली को काम-काज के लिए बुलवा लिया गया. उसने एक खुश्क पेड़ काटा. गांव की लड़कियों को चावल की सेवइयां तैयार करने में मदद दी. सूखी हुई रोटियां कूटकर लड्डू बनाये गये और लड़कियां-औरतें सब मिलकर गाने-बजाने लगीं. खान साहब ने कहा, "जनाब अली! सारे काम हो गये, पर घर में सिर्फ पानी पर्याप्त नहीं है. आज सारा दिन पानी भर ले, ताकि शादी के दिन कष्ट न हो."

जनाब अली ने घड़े उठाये और पानी लाने के लिए नदी की ओर चल दिया, पर न जाने क्यों आज उसके पांव डगमगा रहे थे. पिछले कई दिन से काम करते-करते वह थका तो नहीं था, पर बुझ-सा जरूर गया था.

सुबह से शाम तक जनाब अली पानी भरता रहा. सारे बर्तन भर दिये. अड़ोस-पड़ोस के बरतन भी खाली न रहे. किसी ने उसे रोका नहीं. और फिर वह पानी लाकर छिड़काव करने लगा. यहां तक कि आंगन कीचड़ बन गया और खान साहब ने डांटकर कहा, "जनाब अली! शाम होने को है. अब पानी लाना छोड़कर कोई दूसरा काम भी देख लो."

अगली सुबह वह सारे काम निपटाकर चिलम पीने लगा था कि पटाखा छूटने की आवाज आयी. उसके बाद बंदूक से गोली चली और किसी ने कहा, "लो जी, बारात आ गयी." देखते ही देखते दूल्हे की पालकी आंगन में पहुंच गयी. सभी दूल्हे को देखने गये. लड़कियां अंदर से निकल आयीं. जनाब अली ने भी दूल्हे को देखा और फिर दौड़ता हुआ अंदर गया. शायद अमीना को वही बताना चाहता था, जो कुछ बाहर लोग कह रहे थे. अमीना का दूल्हा बहुत खूबसूरत है. बड़ा गभरू है. . .

पर अमीना को हल्दी मलकर न जाने किस कोने में छिपा दिया गया था. कमरे में सब औरतें भरी थीं. वह आंगन में खड़ा पट-पट आंखें खोलता और बंद करता रहा और अमीना कहीं दिखाई न दी. अचानक अमीना की मां बाहर आयी. जनाब अली ने जोश के मारे उनका रास्ता रोक लिया और बोला, "मां जी! मुबारक हो. अमीना का दूल्हा. . ."

अमीना की मां दूल्हे का स्वागत करने जा रही थी. जनाब अली को यों रास्ता रोकते देखकर उसे गुस्सा आ गया. वह समझी, इनाम लेना चाहता है. झिड़ककर बोली, "दफा हो जा. और मुझे अपना काम करने दे. . .पागल. . ."

जनाब अली हैरान रह गया. उसने क्या कसूर किया था, जो यों डांट पड़ी. चुपचाप एक ओर हट गया. आंगन ही से नहीं, घर से भी. उसने न कुछ खाया, न पिया. बस, अपनी झोंपड़ी में जाकर लेट गया. शादी के दौरान किसी ने उसे नहीं देखा और फिर वह किसी को याद भी क्यों आता? सारा काम तो हो चुका था. खाना पक चुका था. लकड़ी पर्याप्त पड़ी थी और पानी खत्म होने में न आता था.

▣

कई महीने बीत गये. जनाब अली इसी प्रकार मेहनत-मजदूरी करता रहा, एक दिन अमीना की मां ने उसे बुलवाया और कुछ चीजें देकर अमीना की ससुराल अजीम नगर भेजा. बारह कोस का फासला था. जनाब अली वहां पहुंचा तो सिर से पांव तक पसीने से सराबोर था.

अमीना का पति संयोगवश बीमार पड़ा था. शहर से डाक्टर भी देख गया था. जनाब अली दुआ-सलाम के बाद आंगन ही में बैठ गया. इतने में अमीना का देवर पास के कस्बे से लौटा और उदासी से बोला, "भाभी! बाजार से तो डाब मिला नहीं. घर के पास नारियल का जो पेड़ है, उस पर डाब तो मौजूद है, पर कोई आदमी नहीं मिल रहा, जो पेड़ पर चढ़ सके."

डाक्टर ने अमीना के पति के लिए डाब का पानी प्रस्तावित किया था, पर नारियल का पेड़ इतना ऊंचा था कि उस पर कोई अनुभवी तोड़ने वाला ही चढ़ सकता था. अमीना का चेहरा बुझ गया. जनाब अली तत्काल बोला, "दीदी! दुखी न हो. मैं नारियल पर चढ़ने का प्रयत्न करता हूं."

अमीना ने उसकी ओर देखा. फिर उदास स्वर में बोली, "जनाब अली! हमारे पास तो क्या, सारे गांव में किसी के पास सीढ़ी नहीं. तुम नारियल पर कैसे चढ़ोगे?"

जनाब अली हंस पड़ा, "तुम क्यों घबराती हो दीदी! मुझे एक रस्सी ला दो. मैं दाऊ बनाकर पेड़ पर चढ़ जाऊंगा."

इससे पहले कि अमीना उत्तर दे, उसका देवर अंदर से रस्सी का गुच्छा ले आया. जनाब अली ने रस्सी को दुहरा-तिहरा किया. दाऊ बनाकर दोनों ओर गांठ दी और आंगन से निकल आया. अमीना और उसका देवर भी उसके पीछे थे. नारियल के सबसे ऊंचे पेड़ के पास जाकर जनाब अली ने तने के गिर्द रस्सी डालकर दाऊ बांध लिया और देखते ही देखते पेड़ पर चढ़ गया. चाकू से डाब का एक गुच्छा काटकर उसने जमीन पर फेंक दिया और अमीना की ओर देखा. वह बहुत नीचे थी, पर उसका दमकता हुआ चेहरा साफ दिखाई दे रहा था. उसने एक हाथ उठाकर आंखों के गिर्द रखा हुआ था. कलाई रंग-बिरंगी चूड़ियों से भरी हुई थी. जनाब अली को यों लगा, जैसे चूड़ियां खनक रही हैं.

एक क्षण के लिए वह वायुमंडल में तैर गया. और शायद उसी क्षण उसके हाथ की पकड़ छूट गयी. उसने आंखें खोलकर देखा, वह तेजी से नीचे की ओर जा रहा था. उसने दाऊ पर जोर लगाकर रुकने का प्रयत्न किया, पर रस्सी इतना वजन सहन न कर सकी और टूट गयी. जनाब अली तीस हाथ की ऊंचाई से जमीन पर आ गिरा.

इतनी ऊंचाई से गिरने के बावजूद वह मरा नहीं, पर उसके अंदर कोई ऐसी चोट आयी कि मुंह से खून जारी हो गया. अमीना घर के अन्य लोगों को जमा होते देखकर बोली, "पागल कहीं का . . . मैंने पहले ही कहा था कि इतने ऊंचे पेड़ पर न चढ़ो, पर उसने मेरी एक न सुनी."

कुछ लोगों ने मिलकर जनाब अली को उठाया और अमीना के घर के पिछवाड़े लकड़ी के बने हुए एक झोंपड़े में डाल दिया. जनाब अली ने दो-एक बार उठने का प्रयत्न किया, पर शरीर ने साथ न दिया. आखिर को उसने आंखें बंद कर लीं और हाय-हाय करने लगा.

गांव वाले थोड़ी देर उसके पास बैठे. फिर पड़ोसी गर्म दूध का प्याला देकर चले गये. शाम तक वह अकेला रह गया. अमीना घर में व्यस्त थी. डाब से पानी निकालकर पति को पिला रही थी. उसे संभाल रही थी. उसकी सेवा-सुश्रूषा कर रही थी. अगले दिन दोपहर तक वह उधर जा ही न सकी और न किसी ने जनाब अली का हाल पूछा. उसे तो इतना भी याद न रहा कि दूसरी सुबह जो डाक्टर उसके पति को देखने आया था, उसे ही जनाब अली की ओर भेज दे.

एक दिन और एक रात उसी जगह पड़े-पड़े जनाब अली इस दुनिया से विदा हो गया. यों तो हर आदमी इस दुनिया में अकेला आता है और अकेला चला जाता है, पर जनाब अली तो यहां रहा भी अकेला ही.

▣

जब उसके मरने की खबर अमीना के ससुराल वालों तक पहुंची तो सभी ने कहा, "उस आदमी ने खाम-खाह जान दी. अमीना के पति की हालत संभल चुकी थी और वह उसके लिए पौष्टिक आहार तैयार कर रही थी. उसने भी सिर हिलाकर सबका अनुमोदन किया. अमीना के पति ने कहा, "अगर उसका कोई नहीं तो लाश गांव वापस भेजने की क्या जरूरत है. यहां किसी को चार-पांच रुपये दे देते हैं. वह उसे दफन कर देगा." अमीना के पति ने अपना वचन पूरा किया. उसने फकीरा भाई को, जो उस गांव का एक मजदूर था, पूरे पांच रुपये दे दिये, हालांकि जो डाब जनाब अली ने नारियल के पेड़ से उतारे, उनकी मजदूरी पांच आने भी नहीं थी. □

● अनुवाद : सुरजीत

बहुत कोशिशों के बावजूद हम इस कहानी के लेखक का नाम ज्ञात नहीं कर सके. जहां से यह कहानी ली गयी है, वहां भी लेखक का नाम नहीं था. लेखक की जगह मात्र 'अज्ञात' लिखा हुआ था. लेकिन अपने मित्र और पड़ोसी देश श्रीलंका की यह कहानी हमें अच्छी लगी, इसीलिए बगैर लेखक का नाम दिये अपने पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं.

बाढ़

श्रीलंका के पोस्टल डिवीजन नंबर 7 के दफ्तर (कोलंबो) के एक समारोह में हरी चाय का दौर चल रहा था. हमारे शरीर सर्दी में सिकुड़ गये थे और चाय की थोड़ी मात्रा शरीर में गर्मी पैदा करने का एक अस्थायी बहाना साबित हो रही थी.

मौसम पिछले पांच दिनों से खराब था. वर्षा निरंतर हो रही थी. श्रीलंका उस समय दक्षिण-पश्चिमी मानसून के घेरे में था. इन मौसमी हवाओं की विनाश लीलाएं किसी से छुपी न थीं. जब निरंतर बारिश होती तो छोटी-छोटी नदियां दरियाओं का रूप धारण कर लेतीं. घाटियों में दरिया समुद्र की तरह बिफरने लगते. बाढ़ का पानी बस्तियों में प्रवेश कर जाता. मकान गिर जाते. कई इनसानी जानें उसका ग्रास बन जातीं. चाय के लहलहाते बाग डूब जाते. चावल की फसल बरबाद हो जाती, और उत्तरी तट के साथ-साथ लगे-फैले नारियल के पेड़ टूटकर गिर पड़ते.

उस समय भी मौसम के तेवर आने वाले खतरों की चुगली खा रहे थे. यद्यपि हम एक अर्ध-सरकारी समारोह में शामिल थे, तथापि अनिश्चित परिस्थितियों को देखते हुए सब सैनिक वर्दी पहने सहायता-कार्य के लिए बिलकुल तैयार नजर आ रहे थे.

आखिर वही हुआ. सहसा खतरे की घंटी बजने लगी. मैं भागता हुआ फील्ड-ऑपरेशन कमांडर के दफ्तर में पहुंचा.

"प्लाटून कमांडर नंबर एक!" आपरेशन-कमांडर ने मेरी ओर इशारा किया, "ट्रक, रबड़ की नावें और अन्य सुरक्षा-सामग्री के साथ अपने दस्ते को लेकर फौरन इस स्थान पर पहुंचो." उसने दीवार पर लटके हुए नक्शे पर कोलंबो से तीस मील उत्तर की ओर एक गांव के गिर्द लाल दायरा लगा दिया. यह गांव एक दरिया के किनारे स्थित था, और दरिया में क्रमशः बढ़ता हुआ पानी सिचाई के तालाब का बांध तोड़कर किसी भी क्षण अनेक बस्तियों को तहस-नहस कर सकता था.

थोड़े-से समय में हमने सहायता कार्य की तैयारी पूरी कर ली. ट्रक गति में आये और हम नगर की निस्तब्धता को भंग करते हुए अपने गंतव्य की ओर बढ़ चले. हमारे होंठों पर मौन की मोहर लगी हुई थी. कुछ पता न था कि क्या घटित होने वाला है! रास्ता सख्त दुर्गम था. सड़कों पर पानी बिछा था. गंतव्य पर पहुंचकर हमने अपेक्षाकृत ऊंची जगह पर कैंप लगाया. दरिया में एक-दूसरे से टकराती हुई लहरें कहर

ढा रही थीं. हमारे दाहिनी ओर विशाल प्रदेश में मटियाले रंग का पानी फैला हुआ था. क्षितिज में मकानों की छतें और छप्परों की चोटियां नजर आ रही थीं. दरिया की बाढ़ का पहला निशाना यही गांव बनने वाला था.

हमारे पास कुल चार रबड़ की नावें थीं. मैंने अपने जवानों को हुक्म दिया कि वे अविलंब लोगों को गांव से बाहर निकालने का काम शुरू कर दें. स्वयं मैं बड़े मल्लाह कारपेंडी के नेतृत्व में नाव पर सवार होकर गांव की ओर चला. यह हमारा सौभाग्य था कि हम उपयुक्त समय पर पहुंच गये. पानी ने अभी-अभी गांव में प्रवेश किया था. उसकी गहराई कुछ अधिक न थी. बच्चे छींटे उड़ाते गलियों में दौड़ते-फिरते थे. लोग-बाग घरों का सामान, छतों और पेड़ों पर रखने में मग्न थे. बैलगाड़ियों पर चारपाइयां और संदूक लदे हुए थे. कई स्थानों पर लकड़ी के तख्तों को जोड़-जोड़कर ऊंचे-ऊंचे चबूतरे से बना लिये गये थे, जिन पर दुर्बल मर्द, औरतें और बच्चे बैठे हुए थे. इस ताजा मुसीबत ने बूढ़ों के चेहरों पर झुर्रियां और अधिक प्रत्यक्ष कर दी थीं.

मैंने गांव में प्रवेश करके ऊंची आवाज में घोषणा की—"भाइयो! पानी का सतह क्षण-प्रतिक्षण ऊंचा हो रहा है. आप लोगों की यह तदबीरें किसी काम न आयेंगी. हम आपको गांव से निकालकर सड़क की दूसरी ओर ऊंची जगह पर पहुंचाने आये हैं. सरकार आपकी खुराक, लिबास, और बाढ़ उतर जाने के बाद दुबारा पुनर्वास की सभी सुविधाएं प्रदान करेगी."

सब लोग अपना-अपना काम छोड़कर हमारी ओर उन्मुख हो गये. जब मैं घोषणा समाप्त कर चुका, तो वे दुबारा काम में लग गये. मैं बार-बार अपनी घोषणा दुहरा रहा था. हर बार मेरी आवाज पानी की लहरों से टकराकर रह जाती या फिर जवाब में कुत्ते भूंकने लगते.

'मूर्ख कहीं के! इनको कैसे समझाया जाये. . . .' मैं उद्विग्न हो रहा था. एक ओर कर्त्तव्यानुभूति और दूसरी ओर निरुत्तर संज्ञाहीनता. मैं तीव्र मानसिक यातना से ग्रस्त था.

सामने बांस की सीढ़ियों से एक बूढ़ी स्त्री खपरैल पर चढ़ रही थी. उसकी कमजोर टांगें बड़ी कठिनाई से एक-एक सीढ़ी तय करतीं. उसकी सांस फूली हुई थी. गीले कपड़े शरीर से चिपके हुए थे. जब वह सांस अंदर खींचती तो पसलियों के बीच गढ़े साफ तौर पर दिखाई देते. मैंने आवाज दी, "माई! इधर नाव में क्यों नहीं आ जाती. हम तुझे सुरक्षित स्थान पर छोड़ आयेंगे."

"कहां चलूं?" उसके स्वर में कड़क थी, "काहे को चलूं?" उसने कर्कशता से कहा, "हम तो यहीं ठहरेंगे, और जो थोड़ा-बहुत है, उसकी रक्षा करेंगे. क्या तुम चाहते हो, हम उससे भी वंचित हो जायें."

"माई, तुम्हारी कोई चीज नष्ट हो गयी तो सरकार तुम्हें दे देगी!"

"सरकार. . . .सरकार. . . .हूंह!" बूढ़ी स्त्री ने थूक दिया, "ईश्वर ही सब कुछ तबाह करता है, वही दुबारा देता भी है. . . .सरकार क्या देगी भला! पिछली बाढ़ में मेरी जवान बेटी डूबकर मर गयी. क्या सरकार वापस दिला सकती है मेरी जवान बेटी?" बुढ़िया खपरैल पर चढ़कर हमारी ओर मुंह करके चुपचाप बैठ गयी. वह अपने खयालों की दुनिया में खो चुकी थी.

"ईश्वर! तू देखता नहीं, हम सारी उमर धान काश्त करते हैं. इसके इर्द-गिर्द बाड़ लगाते हैं. फिर बाड़ आगे बढ़कर हमारी खेती को खा जाती है. आह! हम कर भी क्या सकते हैं. . . .हम कहां चले जायें!"

मैंने अवसर अनुकूल जानते हुए दुबारा कहा, "माई. . . .! तो फिर हमारा कहा मानो! हमारे पास चली आओ, यहां नाव में. हम तुम्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देंगे." पर वह टस से मस न हुई.

हम निराश होकर आगे बढ़े. एक जगह बहुत से आदमी जमा थे. मैं उस समय भी अंतर्द्वंद्व के कारण पागल हो रहा था. क्रोधित स्वर में उनको संबोधित करते हुए बोला, "तुम स्त्रियों और बच्चों को गांव खाली करने का हुक्म क्यों नहीं देते? क्या तुम मर्द कुछ अधिकार नहीं रखते? क्या अपने साथ इनको भी ले डूबने पर तुले हुए हो?"

"गांव में मियां-बीवी, मर्द और औरत मिलकर खेतीबाड़ी करते हैं. वे इकट्ठे खाते-पीते हैं." एक झुकी हुई कमर वाले बूढ़े ने लाठी का सहारा लेते हुए कहा, "क्या तुम इनको एक-दूसरे से अलग करना चाहते हो. . . .बिलकुल अलग!"

"मुझे इन लोगों को यहां से जबरदस्ती निकालना पड़ेगा. पानी का सतह चिंताजनक सीमा तक ऊंचा हो चुका है!" मैंने निर्णायक स्वर में अपने मल्लाह को संबोधित करते हुए कहा.

"श्रीमान, आप इनको मजबूर नहीं कर सकते!" कारपेंडी ने उत्तर दिया; "वे ग्रामीण हैं. यहीं पले-बढ़े हैं. आपकी बात इनकी समझ में नहीं आ सकती."

"वे हमारी बात समझ नहीं पाते तो क्या हुआ! हमें उनको और उनके हालात को समझाने का प्रयत्न करना चाहिए!" मैंने तनिक दार्शनिक स्वर में कहा.

"अब आये हैं आप सही बिंदु पर!" मल्लाह कारपेंडी ने मेरी पीठ ठोंकी और कहा, "भला इस बाढ़ का आप क्या कारण बतायेंगे?"

इस अकस्मात प्रश्न पर मैं बौखला-सा गया. दार्शनिक बहस का यह कौन-सा अवसर था, पर मेरे मुंह से बरबस निकला—"इश्वरेच्छा!"

इस एक शब्द ने सारी स्थिति का स्पष्टीकरण कर दिया. ग्रामीणों का व्यवहार इस शब्द को अवचेतन रूप में स्वीकार कर लेने का परिणाम था. ऐन उसी क्षण ग्रामीणों की खुसर-फुसर मेरे कानों से टकरायी—"वे कहते हैं, हम गांव छोड़कर बाहर चले जायें और अपना सामान लुटेरों के हवाले कर दें. वे लोग सुबह के समय भी आये थे, पर हमने उन्हें मार भगाया. बाढ़ कोई पहली बार थोड़ी आयी है, जो हम भयभीत होकर भाग जायें."

मुझे अपना मिशन असफल होता दिखाई दे रहा था. कोई व्यक्ति हमारी मदद स्वीकार करने को तैयार न था. उल्टा वे तरह-तरह की बातें बना रहे थे, पर यह स्थिति अधिक देर तक कायम न रह सकी. एक जबरदस्त शोर के साथ सिंचाई के तालाब का बांध टूट गया. पानी का एक बहुत बड़ा रेला आया और. . . .उसके बाद मुझे कुछ सुध-बुध न रही.

न जाने कितना समय मैं लहरों के थपेड़ें खाता रहा था. आखिर जल की सतह पर उभरा, तो मुझे अपने अस्तित्व का एहसास हुआ, पर उस समय मैं कहां था, मुझे कुछ पता न चला. पानी का तेज प्रवाह मुझे ढकेले जा रहा था. मेरे भारी-भरकम सैनिक बूट और वरदी पानी में भीगकर बेहद बोझिल हो चुके थे. 'जीवन चाहते हो, तो इस लिबास से छुटकारा प्राप्त करो'—खयाल आते

पाकिस्तानी लघुकथा

सिगरेट का धुआं

□ हनीफ बावा

वह आज भी अपने मकान के सामने कुरसी पर बैठा, गांव की निखरी हुई फिजां में सिगरेट का धुआं घोल रहा था. राह के दूसरी ओर गांव के लोग एक दायरे में बैठे थे और उनके बीच मिट्टी का हुक्का किसी बूढ़े गवैये की तरह चक्कर काट रहा था.

वह गांव के चौधरी अल्ला बख्श का बेटा जमीद था. वह लाहौर शहर के गवर्नमेंट कॉलिज में बी. ए. में पढ़ता था. अब गर्मी की छुट्टियों में गांव आया हुआ था. जब सूरज डूबने लगता, तो वह कुर्सी बाहर निकालता और सिगरेट सुलगाकर बैठ जाता. दिन के समय उसके बचपन के दोस्त उससे मिलने आते और वह उनसे इस तरह झेंप जाता, जैसे वह कोई अजनबी हो.

हालांकि बचपन में वह उनके साथ गिल्ली-डंडा खेलता था, ताश की बाजियां लगाता था, कबड्डी खेलता था, रात को जब चांदनी गांव के कच्चे कोठों के साथ हंसी-खेल कर रही होती, तो वह उनके साथ मिलकर किसी बुड्ढे से परियों की कहानियां सुना करता था.

लेकिन जबसे वह बी. ए. में पढ़ने लगा था, तो गांव के इन बूढ़े-बुजुर्गों से अलग रहने लगा था.

आज भी वह अकेला कुर्सी पर बैठा सिगरेट के धुएं को आसमान की तरफ छोड़ रहा था. बिलकुल चुपचाप. रात की गहरी खामोशी की तरह. सामने रास्ते के परली तरफ गांव के वही लोग, जिनसे वह कहानियां सुना करता था, बैठे हुक्का पी रहे थे.

बचपन में जब वह कहानियां सुना करता था, उसका दिल एक अजीब-सी खुशी से भरा रहता था. वह हमेशा सोचा करता था कि उन कहानियों के नायकों की तरह वह भी किसी पर रहम करे, किसी के काम आये. किसी के पंजे में फंसे हुए इनसान को अपनी जान मुसीबतों में डालकर अपने देश वापस लाये.

"नत्थू बाबा, रात वाली बात सुनकर बड़ा मजा आया." यह आवाज रास्ते के उस तरफ बैठे किसी जवान की थी, "भई, मेरी तो आंखों में आंसू आ गये!"

"हां बाबा, जब उस बकरियां चराते लड़के को देव हांककर ले जाते हैं, तो उसकी मां किस तरह पागलों जैसी बेल के दरख्तों से अपने बेटे का पता पूछती है और रूख कैसे उसे कुछ भी बताने के बजाय आंसू टपकाने लगते हैं. . . !"

"अल्लाह ने मां का दिल भी कैसा बनाया है!" बाबा के चेहरे पर उदासी बिखर गयी.

"अस्सलामालेकुम!" एक राही की आवाज थी.

उसे बैठने के लिए कहा गया. वह बैठ गया. हुक्का पेश किया गया. उसने दो कश लगाये और नली को बाबा नत्थू की तरफ घुमा दिया.

"क्यों भाई मुसाफिर, कहां से आये हो?" बाबा नत्थू ने नली पकड़ते हुए पूछा.

"रामगढ़ से आया हूं. और 'कदी नहीं' गांव जाना है."

"गांव 'कदी नहीं'!" बाबा नत्थू ने ऐसे हैरान होकर कहा, जैसे वह गांव यहां से बहुत दूर हो. सूरज भी डूब गया है.

"आज तुम हमारे पास ही रहो."

"आपकी बड़ी मेहरबानी. रात अपनी है. आहिस्ता-आहिस्ता पहुंच जाऊंगा."

बाकी लोगों ने भी उससे रुकने के लिए कहा. यह भी कहा कि जाना ही है तो रोटी खाकर चले जाना, लेकिन मुसाफिर ने रोटी खाना भी मंजूर न किया.

बाबा नत्थू ने कहा, "अच्छा, अगर रोटी नहीं खाओगे, तो दूध पीयोगे न? जा रे रोशन! दूध का बड़ा गिलास भर ला." और लड़का दूध का गिलास भर लाया. मुसाफिर ने दूध पीया, हुक्के के दो कश लिये और 'असलामालेकुम' कहते हुए अपनी राह चल दिया.

इसी बीच एक मुसाफिर और आ गया. वह सीधे जमीद के पास गया. वह रंग-ढंग से पढ़ा-लिखा लगता था. उसने डिबिया से सिगरेट निकाली और होंठों में फंसाकर एक हाथ जमीद की तरफ बढ़ा दिया. जमीद ने जलती हुई सिगरेट उसके हाथ में दे दी. उसने अपनी सिगरेट सुलगायी और जमीद की सिगरेट वापस करते हुए आगे बढ़ गया. अब जमीद के कश इतने लंबे हो गये थे कि राह के उस ओर बैठे लोग उसे धुएं में गुम होते नजर आने लगे. □

● अनुवाद : सुदीप

ही मैंने ऐसा किया. मेरे शरीर पर एक बनियान और नेकर बाकी रह गयी.

रात अंधेरी थी. मेरे चारों ओर उफनती मौजें थीं, या इक्का-दुक्का ऊंचे-ऊंचे नारियल के पेड़ों की चोटियां. आशा-निराशा की इस अवस्था में बहुत दूर प्रकाश दिखाई दिया, जो किसी पक्के मकान की खिड़की से छनकर आ रहा था. यह प्रकाश मेरे लिए लाइट-हाउस की स्थिति रखता था. मैं पानी में घंटों से डूबा हुआ था. लगातार बारिश और ऊपर से तूफानी हवा. मेरा रोम-रोम कांप रहा था. मकान तक पहुंचने के लिए खासी हिम्मत की जरूरत थी और वह इस समय बिलकुल नहीं थी.

▣

फिर भी जीवित रहने की उमंग ने सहारा दिया और मैं तैरता हुआ खिड़की की ओर बढ़ा. आखिर जानलेवा कशमकश के बाद मकान तक पहुंच गया. खिड़की पानी की सतह से तनिक ऊंची थी. शायद यह दूसरी मंजिल के किसी कमरे में लगी हुई थी. मैंने जोर से मुक्का मारा और खिड़की खोलने का प्रयत्न किया. किसी ने मेरी गर्दन पर बंदूक की नली रख दी, "खबरदार! अंदर घुसे तो खैर नहीं!" एक कमजोर किंतु रौबदार अवाज आयी.

"मैं शरण चाहता हूं."

"नहीं, तुम लुटेरे हो. मैं अपने खजाने की रक्षा करना जानता हूं."

मैंने पुनः याचना की. एक नारी मुखड़े ने बाहर झांका. मैं खिड़की के साथ लटका हुआ था.

"जी, यह कोई किस्मत का मारा हुआ है. बाढ़ में बहकर आया है." उसने सहानुभूतिभरे स्वर में कहा.

मेरी गर्दन से बंदूक की नली हटा ली गयी. मैं पानी की सतह से उभरा और छलांग लगाकर बड़ी कठिनाई से कमरे में दाखिल हुआ.

अंदर तेल का लैंप जल रहा था. एक ओर आरामकुर्सी पर एक बूढ़ा अधलेटा था. पिचके हुए गाल. बिना मांस के उभरी हुई हड्डियों का ढांचा. गंजा सिर. आंखें खोपड़ी में धंसी हुईं. बेहद भयानक चेहरा था. बांकपन यह कि हाथों में बंदूक थी. सामने एक सुंदर जवान लड़की शिष्टतापूर्वक खड़ी थी. यह किसी नाटक का दृश्य हो सकता था. मेरी समझ में कुछ न आया.

"तुम सुबह तक यहां ठहर सकते हो!" कमरे की खामोशी टूटी. आवाज किसी कब्र की गहराई से निकलती हुई लग रही थी, "मेरा यहां खजाना है खजाना. देखो, यह जंजीर मेरी कमर से बंधी हुई है और, यह रही बंदूक!" उसने नली पर हाथ फेरते हुए कहा, "मैं खजाने की रक्षा करना जानता हूं."

"बाढ़ बड़ी तीव्र है. तुम्हें अपनी जान बचाने के लिए यहां से चले जाना चाहिए था." मैंने कहा.

"बाढ़ हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती!" बूढ़े ने निश्चित स्वर में कहा, "मैंने यह मकान सीमेंट, बजरी और लोहे से तैयार करवाया है. ठेकेदार का कहना है कि बड़ी से बड़ी बाढ़ भी ऊपर की मंजिल तक नहीं पहुंच सकती."

मुझमें अधिक बातों की शक्ति न थी. दांत बज रहे थे. सारे शरीर में टीसें उठ रही थीं. मेरी हालत देखकर एक कंबल दे दिया गया. मैंने अपने-आप को उसमें लपेट लिया. लड़की ने चाय तैयार कर दी. चाय पीकर जान में जान आयी. अब मुझ पर ऊंघ-सी छा रही थी. अचानक किसी चीज के फटने का शोर हुआ. और मैं चौंक उठा. उफ्! हमारे कदमों के नीचे फर्श में दरार पड़ गयी थी. अचानक एक जोरदार धमाके के साथ फर्श बीच से टूटकर नीचे पानी में जा गिरा. एक ओर मैं रह गया, और दूसरी ओर बूढ़ा और लड़की. हमारी आंखों में भय की परछाइयां तैरने लगीं. लड़की सहमकर कोने में खड़ी हो गयी.

"मक्कार! दगाबाज ठेकेदार! मैं अदालत में उस पर मुकदमा न करूं तो मेरा नाम बदल देना. इतने पैसे खर्च हो गये, पर मकान है. . .!"

एक धमाका और हुआ और वह हिस्सा भी टूट गया जहां बूढ़ा बैठा हुआ था. एक हृदयविदारक चीख के साथ बूढ़ा पानी में गिरा और फिर उसका कोई निशान न मिला.

कमरे में मिट्टी के तेल का लैंप भी बुझ चुका था. लड़की की मौजूदगी का एहसास उसकी आहों से होता था. हमारे लिए इसके सिवा कोई उपाय न था कि बेचैनी से सुबह के आगमन की प्रतीक्षा करें. हो सकता है मेरी गुमशुदगी की सूचना पाकर कोई पार्टी मेरी तलाश में निकले! यही आशा बाढ़, वर्षा और सर्दी आदि के असर को कम करने में सहायक सिद्ध हो रही थी.

▣

राम-राम करके सुबह हुई. बाढ़ की तीव्रता तनिक कम हो गयी थी. मैंने खिड़की से बाहर झांकते हुए चारों ओर नजर दौड़ायी. दृष्टि-सीमा तक पानी ही पानी था. इतने में वायुमंडल में गड़गड़ाहट-सी सुनाई दी. सेना का एक हैलीकॉप्टर निकट ही उड़ रहा था. मैंने हाथ हिला-हिलाकर उसे अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया.

मैंने देखा, वह हमारे मकान की ओर बढ़ रहा था. शायद किसी ने मुझे देख लिया था. मकान के ऊपर पहुंचकर हेलीकॉप्टर रुक गया. रस्से की सीढ़ी नीचे फेंकी गयी. पहले लड़की ऊपर चढ़ी. उसके बाद मैं भी हैलीकॉप्टर में सवार हो गया. अंदर मल्लाह कारपेंडी जैसे मेरी प्रतीक्षा कर रहा था.

"मुझे पता था, आप अवश्य किसी न किसी सुरक्षित स्थान पर शरण ले रहे होंगे!" कारपेंडी के स्वर में शायद व्यंग्य था.

हेलीकॉप्टर एक जगह नीचे उतरा. यह बाढ़ग्रस्तों का शिविर था. प्रदेश के बचे-खुचे ग्रामीण यहां शरण लिये हुए थे. शिविर में सैनिक अफसर भी मौजूद थे. सबने मुझे घेर लिया और मेरी कहानी सुनने लगे.

मैंने लड़की से पूछा, "अब तुम्हारा क्या इरादा है?"

"मैं. . . .मैं. . . ." उसने मेरी ओर देखा और फिर दौड़कर ग्रामीणों की भीड़ में घुस गयी, "मैं पानी सूखने पर वापस अपने घर चली जाऊंगी. बाढ़ और तूफान आते ही रहते हैं. हम अपना घर नहीं छोड़ सकते." □

आपात्कालीन सूचना

• हुआंग फी

चीनी कहानी

सारे दिन की थकावट के बाद, रेन लिन अभी सोया ही था कि दरवाजे पर एक तेज दस्तक ने उसे जगा दिया. "आपात्कालीन सूचना!" पार्टी कमेटी के कार्यालय की देखभाल करने वाले बूढ़े ली ने आवाज दी.

रेन और देर करने की हिम्मत न कर सका. उसने तेजी से बिजली जलायी. एक कोट अपने कंधों पर डाला और दरवाजा खोल दिया. ठंडी हवा के तेज झोंके के साथ बूढ़े ली ने अंदर प्रवेश किया और एक कागज रेन को थमा दिया जिस पर बड़े-बड़े शब्दों में कुछ पंक्तियां लिखी हुई थीं :

आपात्कालीन सूचना

पार्टी कमेटी की सुबह की पारी के सब सदस्यों को (बूढ़े, बीमार और कमजोरों को छोड़कर) कारखाने के मुख्य द्वार के सामने सुबह छह बजे सड़कों की मरम्मत के लिए एकत्र होना है.

कृपया ध्यान दें : प्लास्टिक के तले वाले जूते न पहनें. साइकिल से न आयें तो अच्छा है. अगर आयें तो ध्यान रखें कि साइकिल के टायर में ज्यादा हवा न हो. ब्रेक का कम से कम इस्तेमाल करें.

गाओ हाओ
जनवरी 10, 1979

कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, बाहर पूर्वी हवा तेजी से शोर कर रही थी. ऐसे में भला गर्म बिस्तर में लेटना किसे अच्छा न लगता. रेन ने अलसाते हुए जम्हाई ली. वह गहरी नींद सो जाना चाहता था पर नींद थी कि आ ही नहीं रही थी. उसके दिमाग में एक ही प्रश्न मंडराता रहा : 'किन सड़कों की मरम्मत इतनी जरूरी है? जो सड़कें कारखाने के अंदर व बाहर हैं वे तो ऐस्फाल्ट की हैं. क्या उनकी मरम्मत होनी है? और अगर होनी भी है तो हम प्लास्टिक के तले वाले जूते क्यों नहीं पहन सकते या साइकिल के टायर की हवा क्यों कम रखनी है? यह बूढ़ा स्वार्थी गाओ भी इस खराब मौसम में लोगों को परेशान कर रहा है. कुछ भी हो, थोड़ी नींद ले ही लेनी चाहिए.' उसने सोने की एक नाकाम कोशिश की, पर वह गाओ को अपने दिमाग से निकाल न सका. दो दिन पहले की एक घटना उसे परेशान कर रही थी.

▣

उस दोपहर को रेन जब एक बैठक में जा रहा था तो उसकी सेक्रेटरी ने उसे दफ्तर की इमारत के पास रोक लिया था. उसने छोटे कद के कुछ बूढ़े आदमी की तरफ इशारा करते हुए कहा, "वे ही पार्टी के प्रथम सचिव गाओ हाओ हैं." अगर रेन को उसके इस पद पर नियुक्ति की सूचना कार्यालय के

क्रांति के बाद के चीनी साहित्य का स्वर प्रमुखतः निर्माणोन्मुख रहा है जो कि तत्कालीन परिस्थितियों में आवश्यक भी था. प्रस्तुत कहानी भी इसी परंपरा की एक कड़ी है इसके लेखक श्री की हेनान प्रांत के लोयांग नगर में एक फैक्टरी में काम करते हैं.

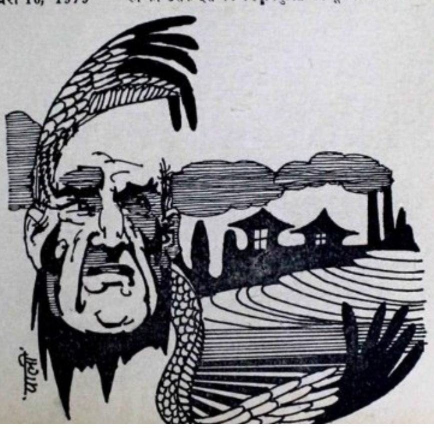

द्वारा न मिलती तो वह कभी विश्वास न करता कि यही वह पुराना और अनुभवी पार्टी कमेटी का प्रथम सचिव है जिसका बहुत दिनों से इंतजार हो रहा था और जिसको दस साल तक लिन पिआओ और 'चांडाल चौकड़ी' ने कष्ट दिया था. बदरंग कंबल में लिपटा हुआ, वह एक पुरानी साइकिल खींच रहा था, एक थैला उसके हैंडल से लटक रहा था और एक बिस्तरबंद साइकिल के पीछे कैरियर पर बंधा था. ऐसा लगा जैसे कि वह कार्य के प्रति बहुत ही ईमानदार है. रेन खुशी से भर गया.

पार्टी कमेटी की मीटिंग में गाओ ने कुछ विषयों की ओर गौर करने के लिए कहा. पहली बात, वे उसे किसी भी नाम से बुला सकते थे सिर्फ कार्यालय की उपाधि को छोड़कर. दूसरा, उसके अपने लिए कोई खास सुविधाएं नहीं मिलनी चाहिए, और तीसरा, उन साथियों का हमेशा स्वागत है जो कुछ सुझाव देना चाहेंगे या किसी विषय पर बातचीत करना चाहेंगे. वह उनकी बातों को ध्यान से व खुशी से सुनेगा और गंभीरता से उनकी समस्याओं पर विचार करेगा. रेन की बारी आयी. उसने सबसे कहा कि गाओ हाओ से वे कुछ सीखें किंतु अपने मन में उसने सोचा, "यह संभव है कि एक नया नेता जितना अच्छा होता है, उससे ज्यादा अच्छा दिखने की कोशिश करता है. सबकी शिकायतें सुनना तो कतई नामुमकिन है." लेकिन कुछ घटनाओं के होने से रेन को स्वीकार करना पड़ा कि वह कुछ भावनाओं में बह गया था.

नियामुसार, मकान से संबंधित विभाग ने गाओ को दो कमरों का मकान दिया पर हठपूर्वक गाओ ने उसमें जाने से इंकार कर दिया. बल्कि उसने राय दी कि विभाग को पहले सन की ओर ध्यान देना चाहिए जो मशीनों की मरम्मत करने वाले कारखाने में खरादी था. गाओ अभी बिल्कुल, नया था, कैसे जान गया कि सन का सात सदस्यों का परिवार एक बहुत छोटे घर में रहता था? वास्तव में यह सुविधाजनक व्यवस्था गाओ के लिए ही खास तौर पर नहीं की गयी थी. बल्कि कार्यालय के सब नेताओं को यही सुविधा दी जाती थी. पर गाओ ने कहा, क्योंकि उसका परिवार उसके साथ नहीं है, वह किसी भी कमरे में गुजारा कर लेगा. उसने कारखाने के क्षेत्र में ही आठ वर्ग मीटर के एक छोटे से कमरे में जाने पर जोर दिया.

कल खाने की छुट्टी में कार्यालय के चपरासी ने उसके लिए खाना खरीदकर लाने की इच्छा जाहिर की तो गाओ ने अपने पैरों की ओर इशारा करके हंसते हुए कहा, "मेरे पास भी एक जोड़ी पैर हैं." पंक्ति में खड़े होकर वह अन्य कामगारों से और कार्यालय के कर्मचारियों से बात करता रहा. उसकी इस बात का बड़ा गहरा असर पड़ा. विभाग के अन्य सचिव, जो कि अच्छे खाने का शौक रखते थे, रसोई से खास खाना बनवाने में डरने लगे. गाओ की पीठ पीछे उनमें से एक गुस्से में बड़बड़ाया, "तो अब दल समिति का प्रथम सचिव पंक्ति में खड़ा होकर खाना खरीदेगा. ठीक है पर मैं ऐसा कभी नहीं करूंगा."

उस दोपहर रेन ने गाओ के साथ मकान संबंधी विभाग का निरीक्षण किया. गाओ ने अचानक पूछा, "क्या कांच खरीदना बहुत कठिन है?" रेन यह सोचकर कि शायद गाओ को किसी ने कांच खरीदने के लिए कहा है, बोला, "शहर में तो कम ही मिल रहा है पर हमारे कार्यालय में काफी है. आपको कितना चाहिए?" अप्रत्याशित रूप से गाओ मुस्कराकर बोला, "मैंने सड़सठ खिड़कियां गिनी हैं, जिन पर कागज चिपका हुआ है. तुम जानते हो आजकल कड़ाके की सर्दी पड़ रही है."

इस तरह की घटनाएं कई बार घटीं. रेन को विश्वास हो गया कि गाओ छोटी-छोटी बातों पर न सिर्फ हंगामा खड़ा कर देता है बल्कि बात की तह तक पहुंचने की कोशिश भी करता है. मसलन एक बार जब वे दोनों एक कामगार के घर के सामने से गुजर रहे थे, गाओ एक बच्चे के रोने की और एक आदमी के चिल्लाने की आवाज सुनकर रुक गया. हर बच्चा रोता है. यह स्वाभाविक ही है. पर कुछ क्षण सुनकर गाओ दरवाजा खोलकर अंदर घुस गया. रेन कुछ भी कहने के काबिल न था इसलिए वह भी पीछे-पीछे चला गया. अंदर एक नवयुवक पागलों की तरह सब्जियां तलता जा रहा था और बुरा-भला कहता जा रहा था. "रोये जाओ, मुझे देर हो रही है और तुम अभी तक रो रहे हो!" बिस्तर पर एक बच्चा बैठा था, साल भर का भी न होगा, बुरी तरह रो रहा था. वहां और कोई न था. गाओ आगे बढ़ा और उसने बच्चे को गोद में उठा लिया. अपने रूमाल से उसका चेहरा साफ किया और उसे बहलाने की कोशिश करने लगा. बच्चे ने रोना बंद कर दिया. वह आंसू भरी आंखों से उस अनजाने दयालु वृद्ध को देखने लगा. नवयुवक पिता भौंचक्का-सा होकर उस अपरिचित की ओर ताकने लगा. उसे जब ध्यान आया कि कार्यालय का निदेशक वहां खड़ा है तो उसने अनुमान लगा लिया कि वह दल समिति का नया सचिव है जिसके बारे में लोग बात कर रहे थे. वह समझ ही नहीं पा रहा था कि क्या करे.

सबसे पहले गाओ ही बोला, "अरे! तुम्हारी सब्जियां जल गयी हैं."

उस नवयुवक ने जल्दी से बर्तन पर से ढक्कन हटाया और चिल्लाया, "तो जल ही गयी. हे भगवान!"

"इसकी मां कहां है?" गाओ ने पूछा.

"काम पर गयी है."

"इसको शिशुशाला में क्यों नहीं रखते?" रेन ने टोका.

इस बात का असर बिल्कुल वैसा हुआ जैसे किसी सांड को लाल कपड़ा दिखा दिया हो, "कार्यालय के नियमों के अनुसार, शिशुशाला बच्चे को तभी भर्ती करेगी जब उसकी मां भी यहां काम करती होगी और मेरी पत्नी की यूनिट में कोई शिशुशाला नहीं है. जब हम दोनों को काम पर जाना होता है तो हम बच्चे को अंदर बंद कर जाते हैं. हमको उसी की चिंता रहती है और हम काम में मन नहीं लगा पाते. हम मजदूरों ने इस बात की कई बार शिकायत की है, पर उच्च अधिकारियों ने हमारी इस समस्या का कोई हल न निकाला."

रेन को याद आया कि यह समस्या पहले भी उठायी गयी थी. वह बड़बड़ाया, "यह बात नहीं कि अधिकारी इस बात का हल नहीं ढूंढना चाहते. इसमें कुछ कठिनाइयां हैं..."

"जैसे कि?" गाओ ने पूछा.

"हमारे पास काफी बिस्तर और परिचारिकाएं नहीं हैं." रेन ने उत्तर दिया.

अपनी घड़ी की ओर देखते हुए गाओ उस नवयुवक से बोला, "हमें अभी कई कठिनाइयों को हल करना है पर हम तुम्हारी परेशानी दूर करने का पूरा यत्न करेंगे. आज हम ऐसा करते हैं, बच्चे को मेरे पास छोड़ दो, तुम कुछ खा-पीकर काम पर जाओ. हम यहां तब तक इंतजार करेंगे जब तक इसकी मां नहीं आ जाती."

▣

एक के बाद एक घटनाओं को याद करते हुए रेन सो गया. वह घड़ी के अलार्म की आवाज सुनकर उठा. जल्दी से उसने कपड़े पहने, हाथ-मुंह धोया और बाहर निकल पड़ा.

बाहर अंधेरा था. उत्तर-पश्चिमी हवा एक सीटी के साथ उसके चेहरे को चीरती चली गयी. कुछ कदम नीचे उतरकर वह फिसला और गिर पड़ा. वह बड़बड़ाता हुआ जल्दी से उठा और चारों ओर देखने लगा. उसने एक और कदम आगे बढ़ाया फिर फिसल गया. इस बार उसे उठने में ज्यादा देर लग गयी. अगर उसने इतने भारी कपड़े नहीं पहने होते तो जरूर उसकी कोई न कोई हड्डी टूट गयी होती. उसने गौर से जमीन की ओर देखा तो पाया कि बिजली की रोशनी में सड़क ऐसे चमक रही थी जैसे सड़क पर शीशा बिछाकर पक्का कर दिया गया हो. बर्फ! वह चौंक गया. अगर वह इस तरह से कार्यालय तक गया तो जरूर अपनी गर्दन तोड़ बैठेगा. अचानक ही उसके दिमाग में सूचना पत्र के शब्द घूम गये. तो शायद यही बर्फीली सड़क थी जिस पर गाओ काम करना चाहता था. पर उसको इस बारे में कैसे पता लगा? रेन अचंभित रह गया—क्या सूचना पत्र में यह नहीं लिखा था कि प्लास्टिक के तले वाले जूते नहीं पहनें? उसने प्लास्टिक के तले वाले जूते ही पहन लिये थे. वह जल्दी से घर गया और कपड़े के तले वाले जूते पहनकर बाहर आया और सावधानीपूर्वक कदम रखता चल पड़ा.

साधारणतः उसको कार्यालय तक पहुंचने में दस मिनट लगते थे पर आज आधा घंटा लग गया. जब वह कार्यालय के मुख्य द्वार के सामने ढलुआं जमीन पर पहुंचा, उस वक्त करीब छह बजकर बीस मिनट हो रहे थे. उस ढलान पर पहुंचकर उसे पिछले साल की बर्फ याद आ गयी. वह जगह इतनी खतरनाक हो गयी थी कि सावधानी से चलने पर भी फिसलने से नहीं बच सकते थे, सिर्फ साइकिल पर ही जाया जा सकता था. जब उसको इस बारे में शिकायत मिली तो उसने यही सोचा कि यह सड़क कार्यालय की नहीं है. और फिर यह हालत साल में एक ही बार होती थी. जब सूरज निकलता था तो बर्फ पिघल जाती थी. इसलिए इस बारे में उसने ज्यादा ध्यान नहीं दिया. फलस्वरूप कई कामगार अपनी साइकिलों से गिरे और घायल हुए. वे कई दिनों तक बीमारी की छुट्टी लेकर अनुपस्थित रहे. पर रेन ने हमेशा उनको ही दोष दिया कि वे देखकर नहीं चलते. इस ढलुआं सतह पर आकर उन्हें साइकिल से उतर जाना चाहिए. लेकिन अब उसे एहसास हुआ कि यह उसका अपना कसूर था जो इस समस्या को नजरअंदाज किया.

"ध्यान से चलो!" अचानक वृद्ध ली नीचे से चिल्लाया, पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी. उस जगह पर कपड़े के तले वाले जूते भी असरदार न रहे. रेन फिसलकर नीचे पहुंच गया जहां वृद्ध ली सड़क पर राख बिछा रहा था.

"पचास से भी अधिक आयु के होकर बच्चों की तरह फिसल रहे हो." शर्माते हुए रेन ने अपने को झिड़का. ली ने उसे उठने में सहायता की. "निदेशक साहब, आपका भी जवाब नहीं," ली ने मजाक में कहा. रेन ली की इस बात से और भी लाल पड़ गया.

रेन भावुक स्वर में बोला, "नहीं, अब ऐसा कभी नहीं होगा, देखो," उसने राख की तरफ इशारा करते हुए कहा, "गाओ ने अब रोक लगा दी है."

"आह! आश्चर्य कभी नहीं रुकते," वृद्ध ली खुशी से चिल्ला पड़ा. "ठहरो! हम जब राख बिछा लेंगे तो मैं फिर कभी नहीं फिसलूंगा. ली, मैं आज ही तुम्हारी समस्या पर गौर करूंगा. तुम अब मेरी आलोचना कभी नहीं करोग. अच्छा." दोनों आदमी हंस दिये.

"गाओ कहां हैं?" रेन ने पूछा.

"वह बॉयलर से राख लेने गये हैं."

राख से ढकी हुई कार्यालय के मुख्यद्वार से लेकर उस ढाल की उतराई तक की सड़क की ओर देखते हुए रेन ने चिंतित होकर पूछा, "तो क्या रात में उन्होंने एक भी झपकी न ली?"

"वह जरा देर चौकीदार के कमरे में सोये थे, पर जैसे ही उन्होंने बर्फ की ओर ध्यान दिया, जल्दी से आपातकालीन सूचना जारी कर दी और खुद कुछ फावड़े तलाशने लगे."

"क्या तुमने उन्हें वह सब बता दिया जो मैंने कहा था?" रेन ने चिंतित होकर वृद्ध ली से पूछा.

"तुमने क्या मुझे पत्थर का समझ रखा है," वृद्ध ली ने तुरंत उत्तर दिया,

"मैंने उन्हें हजार बार कहा, पर बिल्कुल बेकार रहा."

रेन ने कुछ जवाब न दिया. वह भावावेश में आ गया था. "वह बहुत ही अच्छे आदमी हैं. वह अभी यहां पहुंचे ही हैं पर सबका कितना खयाल रखते हैं."

"देखो, वह आ गये," वृद्ध ली ने उसके विचारों को तोड़ते हुए कहा. उसने अपना फावड़ा फेंका और गाओ की तरफ भागा.

सिर उठाकर रेन ने देखा, गाओ सिर नीचा किये एक गाड़ी को बूढ़े बैल की तरह खींचते हुए ला रहे हैं. रेन ने एकदम से अपना ओवरकोट उतारा और चिल्लाया, "गाओ, मैं आ रहा हूं." और जल्दी से आगे बढ़ गया. □

● अनुवाद : रेखा गुरहा

इंडोनेशियाई कहानी

मेरी सहेली

● प्रमुद्य अनंत तूर उन कथाकारों में से हैं, जिन्होंने इंडोनेशिया की फौजी सरकार का समर्थन नहीं किया. परिणामस्वरूप उन्हें एक अरसा-भर 70 हजार लोगों के साथ फौजी यातना-शिविरों में जीवन व्यतीत करना पड़ा. प्रस्तुत कहानी में उन्होने सदियों पुरानी परंपरा 'बाल-विवाह' की विद्रूपताओं को रेखांकित किया है.

▣ प्रमुद्य अनंत तूर

इनेम मेरी सहेली थी. वह आठ साल की थी और मुझसे सिर्फ दो साल बड़ी थी. हमारे गांव में ऐसी सुंदर लड़की और नहीं थी. दिल कहता था कि उसको देखती रहूं. वह हमेशा बन-ठनकर रहती थी. उसका सभी लोगों से व्यवहार भी अच्छा था. इन्हीं गुणों के कारण आसपास के गांवों में भी उसका नाम था. गांवों के कई घरों की यह इच्छा थी कि वह उनकी बहू बने तो बहुत अच्छा हो!

एक दिन वह रसोईघर में पानी गर्म कर रही थी कि मुझसे बोली, "गसमुक, मेरी शादी हो रही है."

"सच्ची!"

"हां, एक हफ्ता हुआ मेरे मां-बाप के पास एक रिश्ता आया था. उन्होंने उसे पसंद भी कर लिया है."

खुशी के मारे मैं चीख पड़ी, "हाय! दुल्हन बनने में कितना मजा है!"

"हां, बहुत मजा आयेगा, जब मेरे लिए सुंदर-सुंदर कपड़े और कीमती गहने आयेंगे और फिर मैं उन्हें पहनकर शृंगार करूंगी, बालों में फूल लगाऊंगी, गालों पर पाउडर और होठों पर सुर्खी!"

एक दिन जबकि इनेम हमारे यहां रह रही थी, उसकी मां आयी. मैं, इनेम और मेरी मां उसके पास ही बैठ गयीं. इनेम की मां कहने लगी, "मैं इनेम को बुलाने आयी हूं."

"क्यों, इनेम का यहां रहना आपको अच्छा नहीं लगता क्या?"

"यह बात नहीं, हमने इसकी शादी की तारीख पक्की कर दी है."

"अच्छा!" मेरी मां चकित होकर कहने लगी, "इसकी शादी कर रही हो?"

"हां, आठ साल की हो गयी है. यही तो शादी की उम्र है."

मेरी मां हंस पड़ी, "आठ साल! अभी बच्ची नहीं है क्या?"

"हम बड़े आदमी नहीं हैं. मेरे विचार से तो शादी की उम्र से यह एक साल ऊपर हो चुकी है."

मां ने उसे समझाने की बहुत कोशिश की, लेकिन वह नहीं मानी और कहने लगी, "भाग्य से ही उन्होंने इसका रिश्ता मांगा है. अगर हमने इनकार कर दिया तो शायद इसकी शादी कहीं और न हो सके."

मां ने फिर बात को आगे नहीं बढ़ाया और मेरी तरफ देखकर कहने लगी, "जा, चिलमची ले आ."

मैं चिलमची लेने के लिए उठी तो मां इनेम से बोली, "इनेम, क्या तुम शादी करना चाहती हो?"

इनेम ने सिर झुका दिया. वह मां की बहुत इज्जत करती थी. मां उसकी मुस्कान से समझ गयी कि उसे कोई एतराज नहीं है.

"लेकिन इस छोटी-सी उम्र में शादी होने पर इसकी जिंदगी पर खराब असर पड़ेगा."

"नहीं", इनेम की मां बोली, "कोई असर नहीं पड़ेगा." मां ने आगे बहस नहीं की. उसे इनेम से हमदर्दी थी. वह उठकर बगीचे की ओर चली गयी.

दो सप्ताह बाद इनेम की मां फिर आयी. इनेम को उसके साथ जाने में कोई एतराज नहीं था. अब इनेम मेरे घर से हमेशा के लिए जा रही थी. वह रसोई घर में आयी और मुझसे बोली, "अच्छा रसोई की रानी, मैं अब जा रही हूं."

▣

शादी से एक दिन पहले इनेम ने नये कपड़े पहने. मां ने मुझे इनेम के घर जाकर पांच किलो चावल और पचीस सेंट हथलेवा के दे आने को कहा. दोपहर के बाद हम सभी बच्चे उसके घर गये और उसकी सुंदरता का बखान करने लगे. उन्होंने घर को बहुत सजा रखा था. दो दिन, दो रातें वहां गाना-बजाना होता रहा. बच्चों ने भी औरतों और मर्दों के नाच का आनंद लिया. लोगों ने जाम टकराये.

जब दूल्हे को दुल्हन के पास लाया गया तो इनेम ने झुक कर उसको प्रणाम किया और फिर सुगंधित जल से उसके पैर धोये.

उस समय मैंने देखा कि इनेम सिसकियां भरकर रोने लगी थी. चेहरे से पाउडर उतर गया था और सुंदर मुख आंसुओं से भीग गया था.

मैंने मां से पूछा, "मां, इनेम क्यों रो रही है?"

मां ने बताया, "जब कोई दुल्हन रोती है तो वह अपने पूर्वजों को बुलाती है. उनकी आत्माएं उत्सव देखने आती हैं. . .अपनी औलाद की सुख भरी शादी देखकर खुश होती हैं और दुआएं देती हैं."

मैंने मां की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया. बाद में मुझे पता लगा कि इनेम शौचालय जाना चाहती थी, लेकिन किसी से कहने पर डर रही थी.

शादी शान से संपन्न हुई. पर बाद में उधार वाले उधार मांगने लगे. शादी के बाद इनेम और उसकी मां रात दिन कशीदे का काम करने लगीं. हमें उनके घर में कभी किसी झगड़े वगैरह की भनक तक नहीं मिली. सब कुछ शांति से चलता रहा.

▣

एक दिन इनेम हमारे घर आयी और सीधी मां के पास चली गयी. उसका चेहरा पीला पड़ गया था. मानो खून ही सूख गया हो.

मां ने उससे पूछा, "इनेम, तुम चिल्ला क्यों रही थी? क्या कोई झगड़ा हुआ था?"

इनेम रुआंसी बोली, "मां, क्या तुम मुझे वापस नहीं बुला सकती? तुम्हारी बड़ी कृपा होगी!"

"क्या कह रही हो इनेम?"

"लेकिन मां, मैं यह सब कुछ सहन नहीं कर सकती." वह रोने लगी.

"क्या तुम पति से खुश नहीं हो?"

"मां, वह हर रात मुझे अपनी बाहों में जोर-जोर से भींचता है. मुझे उससे बड़ा डर लगता है. उसकी कठोर बाहों में मेरा दम घुटने लगता है. तुम मुझे वापस अपने घर बुला लो."

"अगर तुम्हारा पति न होता तो जरूर बुला लेती, लेकिन तुम्हारा पति मौजूद है. तुम शादीशुदा हो. तुम्हें अपने पति की सेवा करनी चाहिए. अगर ऐसा नहीं करोगी तो तुम्हें अपने पुरखों की बददुआ लगेगी. इनेम, वादा करो कि तुम अपने पति का खाना तैयार करके रखोगी. . .और जब वह थका-हारा घर आयेगा तो उसके पांव दबाओगी. अब तुम घर जाओ और सच्चे मन और लगन के साथ पति की सेवा करो."

इनेम उदास होकर चली गयी.

इनेम के जाने के बाद मैंने मां से पूछा, "मां, क्या पिताजी भी तुम्हें बाहों में जोर-जोर से भींचते हैं?"

मां हंस पड़ी और फिर बोली, "नहीं बेटी, तुम्हारे पिताजी संसार में सबसे अच्छे आदमी हैं." कहती हुई मां रसोईघर में चली गयी और चाकू लेकर सब्जी काटने लगी.

▣

एक साल गुजर गया. अचानक एक दिन इनेम हमारे घर आयी. वह बहुत बदल गयी थी. इन बारह महीनों में वह इतनी बड़ी हो गयी थी कि पहचान में नहीं आ रही थी.

उसने मां को प्रणाम किया और उसके सामने बैठकर कहने लगी, "मां, अब मैं बिना पति के हूं."

"क्या?" मां चौंक पड़ी.

"अब मैं बिना पति के हूं." उसने दोहराया.

"क्या तुम्हें तलाक मिला है?"

"हां."

"उसने तुम्हें क्यों छोड़ दिया.?"

इनेम खामोश थी.

"क्या तुमने सच्चे मन से उसकी सेवा नहीं की थी?"

"बहुत की थी."

"थक कर घर आने पर क्या तुम उसके पांव नहीं दबाती थी?"

"मां, मैंने वह सब कुछ किया था, जो तुमने बताया था."

"तो फिर उसने तलाक क्यों दिया?"

"मां, वह मुझे बहुत मारता था."

"क्या?" और मां खामोश हो गयी.

तिब्बती लोककथा

खरगोश की बाछें

खरगोश कहीं जा रहा था कि अचानक एक बहुत बड़े चीते ने उसे दबोच लिया और गुर्राकर बोला, "अब मैं तुम्हारी दावत उड़ाऊंगा."

खरगोश ने अगले दोनों पंजे क्षमा-याचना के अंदाज में जोड़ते हुए फरियाद की, "चाचा! मुझे मत खाओ. मैं तो एक छोटी-सी चीज हूं. मुझे प्राणदान दे दो तो मैं तुम्हें किसी बड़े जानवर के ठिकाने पर ले चलूंगा."

दोनों साथ-साथ चलने लगे. यहां तक कि रात सिर पर आ गयी. खरगोश अपने मुंह से ऐसी आवाजें निकालने लगा जैसे वह कोई चीज मजे ले-ले कर खा रहा हो.

"क्या खा रहे हो?" चीते ने पूछा.

"चाचा! भूख से जान निकली जा रही थी. मैं अपनी आंखें निकालकर खा रहा हूं. बहुत स्वादिष्ट हैं और फिर घबराने की क्या बात है, अभी थोड़ी देर में नयी आंखें पैदा हो जायेंगी."

चीते को खरगोश की बात सुनकर विस्मय तो अवश्य हुआ, पर भूख से मजबूर होकर उसने अपनी आंखें निकाली और चट कर गया.

इसके बाद वह चालाक खरगोश अंधे चीते को ऊंची चोटी की ओर ले जाने लगा...यहां तक कि चीता सहसा गहरी खाई में गिरकर मर गया.

अगली सुबह खरगोश ने एक आदमी को देखा जो घोड़े चरा रहा था. खरगोश उसके पास जाकर बोला, "प्यारे चाचा! क्या तुम चीते की खाल हासिल करना चाहते हो?" उस आदमी ने घोड़े वहीं छोड़े और खरगोश की बतायी हुई जगह पर चीते की खाल उतारने चला गया.

उसके जाने के बाद खरगोश गिद्धों के पास पहुंचा और उन्हें कहा कि अगर वे चाहें तो घोड़ों की दावत उड़ा सकते हैं. गिद्धों ने उसका धन्यवाद किया और घोड़ों पर पिल पड़े...और उन्हें अपनी नुकीली चोंचों से उधेड़ने लगे.

इस काम से निपटकर वह एक चरवाहे से मिला जो जंगल में अपनी भेड़ चरा रहा था. खरगोश ने उसे बताया कि सारे गिद्ध कहीं गये हुए हैं. सुनहरी अवसर है. वह उनके घोंसलों में से अंडे और अन्य चीजें चुरा सकता है. चरवाहा लड़का झट गिद्धों के घोंसलों की ओर चल दिया. अब खरगोश ने भेड़िये से संपर्क किया, "प्यारे मामा! चरवाहा अंडे चुराने गया है. तुम भेड़ों की दावत उड़ा सकते हो!" भेड़िया यह सुनते ही भेड़ों पर पिल पड़ा.

इन सभी कामों से निपटकर खरगोश पहाड़ की चोटी पर चढ़ गया. नीचे झांक कर देखा तो सारा दृश्य उसके सामने था. इस सारे दृश्य को देखकर खरगोश का दिल इतना खुश हुआ कि बरबस कहकहे लगाने लगा. उसने जोर-जोर से इतने कहकहे लगाये कि उसकी बाछें चिर गयीं, जो आज तक अपनी असल जगह पर नहीं आ सकी हैं. □

● प्रस्तुति : सुरजीत

"मां, मैंने सच्चे मन से उसकी सेवा की, लेकिन वह मुझे पीटता था. मैं पीड़ा झेलकर चुप हो जाती थी. क्या यह सच्ची सेवा नहीं है?" उसने गंभीरता से पूछा, मानो अपनी सफाई पेश कर रही हो.

मां खामोश थी और इनेम को ध्यान से देख रही थी. फिर वह फुसफुसाई, "उसने तुम्हें पीटा?"

"हां मां, उसने मुझे इस तरह पीटा जिस तरह मेरे मां-बाप मुझे पीटते हैं."

"शायद तुमने उसकी सच्चे मन और लगन से सेवा नहीं की होगी. अगर पत्नी अपने पति की सेवा करे तो कोई भी पति उसे कैसे पीट सकता है?"

इनेम ने कोई उत्तर नहीं दिया और फिर बात बदलते हुए बोली, "मां, क्या तुम मुझे वापस बुलवाओगी?"

मां ने स्पष्ट उत्तर दिया, "इनेम, अब तुम एक तलाकशुदा औरत हो और मेरे घर में शादी के लायक और लोग भी हैं...तुम्हें अपने घर में रखना मुनासिब न होगा."

"क्या वे भी मुझे पीटेंगे?"

"नहीं, लेकिन और लोग इसे अच्छा नहीं समझेंगे."

इनेम खामोश बैठी रही. मां ने पास जाकर हमदर्दी के साथ उसके कंधे को थपथपाया.

"इनेम, अच्छा यह होगा कि तुम वापस चली जाओ और अपने मां-बाप की सहायता करो. मैं तुम्हें अपने घर में नहीं रख सकती."

▣

वह उठी और निराश होकर अपने मां-बाप के घर चली गयी. उसके बाद वह फिर कभी शायद ही घर से बाहर निकली हो.

वह मां-बाप के लिए एक बोझ है. उसे छोटे-बड़े सभी पीटते रहते हैं. कभी-कभी मुझे उसकी दर्द भरी पुकार सुनायी देती है तो मैं अपने कान बंद कर लेती हूं.

वह अब कभी हमारे घर भी नहीं आती! □

अनुवाद : वासुदेव 'सिंधु-भारती'

तस्वीर बोलती है

▣ छाया : माखन लाल
16, मेन बाजार, पहाड़ गंज
नयी दिल्ली-55

यह तस्वीर क्या बोलती है?—इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक सिर्फ पोस्टकार्ड पर अपने नाम-पते सहित, 31 अगस्त, 1981 तक इस पते पर भेज दें—संपादक, सारिका (तस्वीर बोलती है), 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002. चुने गये दो शीर्षकों पर पचास रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर ऊपर प्रकाशित 'तस्वीर बोलती है' बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. 16 जुलाई,81; अंक : 289 की शीर्षक प्रतियोगिता का परिणाम पृष्ठ : 8 पर देखें.

पूर्व की वीनस बैंकाक से गुजरते हुए

■ मुज्तबा हुसैन

जनाब मुज्तबा हुसैन साहब गये जापान. कई दोस्तों की कई फरमाइशें साथ लेकर और यह सोचकर कि उन्हें जरा भी गंभीरता से नहीं लेंगे. उनमें से एक लेखक मित्र की फरमाइश थी कि इस सफर का सफरनामा न लिखना और सिर्फ इसीलिए उन्होंने यह सफरनामा लिख डाला सारिका के लिए. 'सफरनामा' भेजते हुए जनाब ने लिखा कि "जापान में अपनी दुर्गति का रोजनामचा भेज रहा हूं" कलम मुज्तबा जैसे व्यंग्यकार की और यात्रा हसीन जापान की—एक करेला, ऊपर से नीमचढ़ा. पेश है पहली किस्त.

मुज्तबा हुसैन, एक गीशा पार्टी में : जापान की गुड़ियां बहुत मशहूर हैं.

बात 1980 के जुलाई महीने की है. एक दिन हम हमेशा की तरह देर से दफ्तर पहुंचे तो पता चला कि उम्मीद के खिलाफ हमारे अफसरे-आला ने हमें याद किया है. हम हांपते-कांपते उनकी खिदमत में पहुंचे तो फरमाया, "हम तुम्हें जापान भेजना चाहते हैं. जापान के बारे में कुछ जानते भी हो?"

हमने कहा, "सर, हाई स्कूल तक भूगोल पढ़ा था. उस वक्त तक तो जापान एशिया में ही था. अब जापान ने बहुत उन्नति कर ली है और उन्नतिशील देशों का कोई भरोसा नहीं कि कब किधर को निकल जायें. इतना कह सकते हैं कि जब हम बहुत छोटे थे और दूसरा महायुद्ध पूरे जोरों पर था तो यों लगता था कि जैसे जापान हमारे घर के पिछवाड़े में स्थित है. हमें हरदम यह बताया जाता था कि जापानी अब आने ही वाले हैं. मगर युद्ध खत्म हो गया तो जापान फिर अपनी भौगोलिक सीमाओं में वापस चला गया. जापान के बारे में हमारी झोली में बस इतनी ही मालूमात हैं."

बोले, "जापान के बारे में और क्या जानते हो?"

हमने दिमाग पर थोड़ा जोर देकर कहा, "हां, खूब याद आया. जापान की गुड़ियां बहुत मशहूर हैं."

बोले, "बस इतना काफी है. जापान के बारे में तुम तो बहुत कुछ जानते हो. हम जापान के दौरे के लिए तुम्हारा नाम केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय को भेज रहे हैं."

हमने कहा, "सर, आखिर माजरा क्या है? साफ-साफ बताइए कि आप चाहते क्या हैं?"

बोले, "टोक्यो में यूनेस्को के एशियाई सांस्कृतिक केंद्र की ओर से प्रकाशन का एक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और सेमिनार अक्टूबर में आयोजित किया जा रहा है. इसके लिए हिंदुस्तान से एक पदाधिकारी को भेजना है. और केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय ने विभिन्न विभागों से पदाधिकारियों के नाम मांगे हैं, हम अपने संस्थान की ओर से तुम्हारा नाम भेज रहे हैं. क्या पता कि शिक्षा मंत्रालय इस पाठ्यक्रम के लिए तुम्हारा चुनाव कर ले. कभी-कभी चुनाव में गलती भी तो हो जाती है."

हमने इस जर्रा-नवाजी का शुक्रिया अदा किया और उठकर जाने लगे तो हमारे अफसरे-आला ने पूछा, "इससे पहले कभी बाहर गये हो?"

हमने कहा, "सर, जी तो हमारा भी बहुत चाहता है कि नयी-नयी जमीनें देखें, नये-नये आसमानों में झांक आयें, घाट-घाट का पानी पियें, नये लोगों से नयी-नयी बातें करें, नये चेहरों को नये ढंग से देखें, मगर हमारा देश-प्रेम हमें बाहर जाने नहीं देता. हमें हर दम यह चिंता लगी रहती है कि अगर हम बाहर चले गये तो फिर इस मुल्क का क्या होगा? हमारे बगैर आखिर मुल्क किस तरह तरक्की कर सकता है. फिर हमने कुछ ऐसे लोग भी देखे हैं, जो दस दिन के लिए ही सही, बाहर के किसी मुल्क में जाकर आते हैं तो जिंदगीभर उस मुल्क के किस्से, और वह भी मनगढ़ंत, सुना-सुनाकर अपना और अपने देशवासियों का वक्त बरबाद करते हैं. उन्हें अपने मुल्क का सूरज अच्छा नहीं लगता, चांद की तरफ देखते हैं तो मुंह मोड़कर कहते हैं, 'ब्रिटेन में जो चांद हमने देखा था, वह चांद भला इस मुल्क में कहां नजर आयेगा. भला यह भी कोई चांद है.' गर्ज उन्हें अपने मुल्क की कोई चीज अच्छी नहीं लगती. खुदा न करे, जापान के दौरे के लिए कहीं हमारा चुनाव हो गया तो इस देश में बाकी जिंदगी किस तरह गुजारेंगे."

अथ फरमाइश पुराण

इस बातचीत के बाद एक महीना बड़ी खामोशी के साथ गुजर गया. एक दिन दफ्तर में बैठे काम कर रहे थे कि एक दोस्त ने आकर चुपके-से कहा, "अगर तुम जापान से मेरे लिए एक बढ़िया-सा ट्रांजिस्टर ला सको तो तुम्हें एक खुशखबरी सुनानी है."

हमने कहा, "जरूर सुनाओ."

बोले, "पहले ट्रांजिस्टर लाने का वायदा करो, फिर सुनाता हूं."

हमने वायदा कर लिया तो जनाब ने पहले वह कागज हाथ में थमा दिया, जिसमें ट्रांजिस्टर की तफसील लिखी हुई थी. फिर फरमाया, "यार, अभी-अभी केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय से सूचना आयी है कि जापान के दौरे के लिए तुम्हारा चुनाव हो गया है. अब तो तुम्हें मेरे लिए ट्रांजिस्टर लाना ही होगा."

यह पहली फरमाइश थी. इसके बाद ज्यों-ज्यों हमारे जापानी दौरे की खबर हमारे दुश्मनों में फैली, लोग हमें फरमाइशों की सूची पहले देते थे और मुबारकबाद बाद में. कुछ हजरत ऐसे भी थे, जो फरमाइशों की सूची देने के बाद मुबारकबाद देना भूल जाते थे और हमें मजबूरन उन्हें याद दिलाना पड़ता था कि वे एक खुशगवार फर्ज अदा करना भूल गये हैं.

"लोग हमें फरमाइशों की सूची पहले देते थे और बाद में कुछ हजरत तो फरमाइशों की सूची देने के बाद मुबारकबाद देना ही भूल जाते थे."

हमें बीस दिन बाद जापान पहुंचना था. इसके लिए दोस्तों से सामाने-सफर मांगना था. चूंकि हम सरकारी हैसियत में बाहर जा रहे थे, इसलिए सफर के दूसरे मसले तो फौरन तय हो गये, लेकिन फरमाइशों का सिलसिला दिन-ब-दिन बढ़ता चला गया.

जापान रवाना होने से एक दिन पहले हमने बड़ी मेहनत से दोस्तों की फरमाइशों की सूची तैयार की तो पता चला कि निम्निलिखित सामान जापान से हर हालत में लाना है.

पॅकिट ट्रांजिस्टर (15 अदद), ट्रांजिस्टर-कम-टेप-रिकॉर्डर (10 अदद), शिफान की साड़ियां (45 अदद), केल्कुलेटर्स (25 अदद), सीको घड़ियां (महिलाओं की 10 अदद, पुरुषों की 15 अदद), टेलीविजन के छोटे सैट (4 अदद), टी सैट (4 अदद) टेप रिकार्डर के कैसेट (100 अदद), जापान की छतरियां (20 अदद), जापानी मौजे (75 अदद), फुटकर सामान (100 अदद), जापान की गुड़ियां (2 अदद—एक गुड़िया हमारे मेहरबान दोस्त जनाब पी. गंगा रेड्डी, आंध्र प्रदेश के नागरिक आपूर्ति मंत्री के लिए और दूसरी गुड़िया हमारे दोस्त काजी सलीम की लड़की सलमा के लिए).

हिंदुस्तान से रवाना होने से एक दिन पहले जब हम अपने घर में फरमाइशों की सूची तैयार कर रहे थे तो हमारी आदरणीया श्रीमतीजी ने इस सूची को देखकर सोचा कि लगे हाथों फरमाइशों की अपनी सूची भी हमें थमा दें. हमने इस सूची का हवाई जहाज में ध्यानपूर्वक अध्ययन किया. खासी दिलचस्प सूची है और इसके

अध्ययन से हमारा सफर खासा आराम से कटा, इसलिए कि इस सूची में न ट्रांजिस्टर है, न साड़ी, न टेलीविजन है, न जापानी छतरी. बस, हमसे इतनी मासूम-सी फरमाइश की गयी है कि हम जापान से 50 किलोग्राम गेहूं, 40 किलोग्राम चावल, मूंगफली का तेल 6 किलोग्राम, नहाने का साबुन 6 टिकियां कपड़े धोने का साबुन 8 टिकियां ले आयें. इसके आगे यह सूची होते-हवाते 100 ग्राम लौंग, 100 ग्राम इलायची और 100 ग्राम जीरे पर खत्म हो गयी है.

अलबत्ता जापान पहुंचने के बाद हमारी श्रीमतीजी ने फोन पर हमें इत्तिला दी है कि गलती से महीने भर के सामान की सूची हमारे साथ चली गयी है और जो चीजें जापान से आनी हैं, उनकी सूची डाक से भेजी जा रही है: 'अब जिगर थाम के बैठो मेरी बारी आयी?'

और हां, हमें. . .अपने एक लेखक मित्र की मामूली-सी फरमाइश भी याद आ गयी. उन्हें जब पता चला कि हम जापान जा रहे हैं तो उन्होंने कहा, "तुम जापान जा रहे हो, तो एक छोटी-सी फरमाइश है."

हमने कहा, "फरमाइये!"

बोले, "जापान जाने से पहले यह वायदा करते जाओ कि तुम जापान के बारे में कोई सफरनामा नहीं लिखोगे."

हमने उनकी फरमाइश के बारे में बहुत गंभीरता से गौर किया, मगर जब हम अपने इतने सारे दोस्तों, शुभचिंतकों की फरमाइशों को पूरा नहीं कर रहे हैं तो उनकी फरमाइश

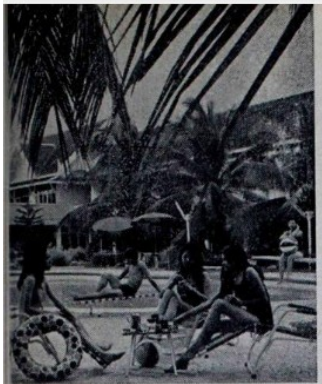

बैंकाक के लगभग 10 किलोमीटर की दूरी पर सागर तटीय नगर बांगसीन के एक होटल का स्विमिंग पूल

पर क्यों गंभीरता का रुख अपनाएं. लगे हाथों एक मिसरा याद आ गया, शायद पंडित हरिचंद अख्तर का है. (यहां जापान में कोई उर्दू किताब भी तो नहीं मिलती कि जिससे शायर का सही नाम मालूम करने के लिए हवाले के तौर पर इस्तेमाल कर सकें) मिसरा कुछ यों है—कहा जापान का डर है कहा जापान तो होगा?

उर्दू में जापान के बारे में शायद यह पहला और अकेला मिसरा है और इंशा-अल्लाह हमारा सफरनामा भी उर्दू में जापान का पहला सफरनामा होगा.

खुश रहो अहले वतन...

देहली से टोक्यो रवाना होने से पहले हमने अपने एक-एक दोस्त को दस-दस दफा फोन करके अच्छी तरह बता दिया था कि हम 28 सितंबर की रात में दो बजे पान अमेरिकन की उड़ान नं. 2 से प्रस्थान कर रहे हैं. पालम का हवाई अड्डा शहर से बहुत दूर है और वक्त भी नामुनासिब है इसलिए हमें छोड़ने के लिए हवाई अड्डे पर आने की जहमत मत करना. बाज दोस्तों को पंद्रह दफा फोन करके वायदा लिया था कि वे हमें विदा करने के लिए नहीं आयेंगे. इस लगातार याद दिलाने के बाद हमें यकीन था कि हवाई अड्डे पर मित्रों और हितैषियों का एक अच्छा खासा जमघट होगा, जो रूमालों के पीछे अपनी आंखें छिपाये भीगे नयनों से हमें हिंदुस्तान से रुखसत करेंगे और हम उन्हें दिलासा देंगे कि 35 दिन की इस मामूली जुदाई में यों अपना कलेजा छलनी नहीं करते.

मगर हवाई अड्डे पर पहुंचे तो देखा कि सिर्फ तीन दोस्त हमें विदा करने के लिए आये हैं. हिंदी के उपन्यासकार प्रभाकर द्विवेदी थे, अंग्रेजी के एडीटर रघुनंदन सहाय सक्सेना थे और तीसरे हमारे हैदराबादी दोस्त बशारतउल्लाह हुसैनी थे. संयोग से ये तीनों दोस्त ऐसे थे, जिन्हें हम हवाई अड्डे पर आने से मना करना भूल गये थे. अगर भूले से यह गलती कर बैठते तो इन दोस्तों से भी हाथ धो बैठते. पहली दफा एहसास हुआ कि हमारे दोस्त हमारे मशवरों पर अब सच्चे दिल से अमल करने लगे हैं!

हमने अपने सफर जापान के लिए खास तौर से पान अमेरिकन के जहाज का चुनाव किया था कि दुनिया की बड़ी हवाई सर्विस है, सफर का मजा आयेगा, फिर यही वह मशहूर एयर सर्विस है, जो दुनिया के गिर्द पूरा एक चक्कर लगाती है. पान अमेरिकन की उड़ान न. 1 सान फ्रांसिस्को से निकलकर टोक्यो, हांगकांग, बैंकाक, देहली, फ्रेंकफर्ट और लंदन होती हुई न्यूयार्क पहुच जाती है यानी पूरब से पच्छिम में जाती है. और उड़ान न. 2 न्यूयार्क से निकलकर उल्टा चक्कर लगाती हुई सान फ्रांसिस्को पहुंच जाती है यानी पश्च्छिम से पूरब की तरफ जाती है.

हम उस रात उड़ान न. 2 के मुसाफिर थे. हम पहुंचे तो दोस्तों ने बताया कि जहाज आ चुका है और बस आप ही का इंतजार है. आप कदम बढ़ायें तो जहाज उड़ान भरे. हमने अपने दोस्तों से इजाजत ली. अपने वतने-अजीज और उर्दू जबान दोनों को खुदा हाफिज कहा और जहाज में आन बैठे.

विमान ने जब उड़ान भरी तो दो बज रहे थे. हमने सोती हुई देहली को नीचे झांककर देखा. बहुत भली लगी. फिर हमने विमान के अंदर नजर डाली तो देखा कि हमारे बराबर एक अंग्रेज बैठा इंजीनियरिंग की कोई किताब पढ़ रहा है और इर्द-गिर्द की सारी सीटें खाली हैं. हमने सोचा कि चलो साहब से उनके देश की बातें करें, उनकी और उनके बाल-बच्चों की खैरियत पूछें कि सफर आसानी से कट जाये. भला हवाई सफर में कोई इंजीनियरिंग की किताब पढ़ता है!

हमने पूछा, "आप कहां से आ रहे हैं?"

साहब ने किताब पर से अपनी नजरें हटाये बगैर जवाब दिया, "लंदन से."

पूछा, "कहां का इरादा है?"

बदस्तूर किताब पढ़ते हुए बोले, "बैंकाक."

उनकी इस रुखाई को देखकर हमें भी ताव आ गया. फौरन अपने बैग में से जापान के बारे में एक किताब निकाली और पढ़ना शुरू कर दिया. उद्देश्य इस अध्ययन का सिर्फ साहब को यह जताना था कि अगर आप किताब पढ़ सकते हैं तो हमें भी किताब पढ़नी

"सारा कसूर मुर्गों का नहीं, भूगोल का था, हम अपनी सवारी में सूरज की तरफ बढ़ रहे थे और सूरज अपनी सवारी से हमारी ओर बढ़ रहा था."

आती है, मगर अभी चंद ही लम्हे गुजरे थे कि एयर होस्टेस हमारी और हमारे बाल-बच्चों की खैरियत पूछने आ गयी.

उसने आते ही हमसे पूछा, "अगर आप सो जाना चाहें तो बंदी आपके लिए चार सीटों के डांडे हटाकर उन्हें पलंग में तबदील कर सकती है. इस वक्त विमान में मुसाफिर भी कम हैं और रात भी बहुत हो चुकी है और अब आपको सो जाना चाहिए."

हमने कहा, "बीबी, आपकी जर्रा-नवाजी का शुक्रिया. लेकिन हम अगर रात में दो बजे तक जाग लें तो फिर हमें सारी रात नींद नहीं आती. लिहाजा हमें हमारे हाल पर छोड़ दो."

तो भी वह बराबर आग्रह करती रही कि हम सो जायें और हम बदस्तूर अपनी हठधर्मी पर कायम रहे. इसके बाद उसने किताब पढ़नेवाले अंग्रेज की तरफ ध्यान दिया और उन्हें भी नींद और आरम के फायदों से आगाह करने लगी. मगर हम उस अंग्रेज के दृढ़ संकल्प की दाद देते हैं कि उसने किताब पर से नजर नहीं हटायी और निहायत कठोर अंग्रेजी में बोला, "जाओ, हम नहीं सोते!"

वह वहां से भागी और अपने केबिन में बैठकर किताबें पढ़ने वाले हम दोनों मुसाफिरों को हैरत से देखने लगी. सच तो यह है कि उस वक्त विमान में हम दो मुसाफिर और एक एयर होस्टेस के सिवाय कोई जाग नहीं रहा था. हम दोनों मुसाफिर सो जाते तो क्या अजब कि एयर होस्टेस भी सो जाती.

खैर, हम दोनों में किताबें पढ़ने और काफी पीने का मुकाबला जारी था ही कि अचानक हमारी नजर खिड़की के बाहर जा पड़ी तो देखा कि आसमान पर सूरज की सवारी के निकलने का ऐलान हो रहा है. घड़ी देखी तो चार बज रहे थे. हमने कहा—या अल्लाह! क्या माजरा है. आज सूरज को धरती के नीचे से निकल आने में इतनी जल्दी, इतनी बेकरारी क्यों है. हमारे मुल्क के मुर्गे तो अभी सो रहे हैं और यहां के मुर्गों ने अभी से बांग देना शुरू कर दिया है. फिर जरा गौर किया तो एहसास हुआ कि सारा कसूर मुर्गों का नहीं भूगोल का है. हम अपनी सवारी में सूरज की तरफ बढ़ रहे थे और सूरज अपनी सवारी में हमारी तरफ बढ़ रहा था.

बैंकाक का हवाई अड्डा सामने आ चुका था. हवाई अड्डे पर उतरने से पहले विमान ने बैंकाक का एक चक्कर लगाया और हमने सचमुच बैंकाक पर एक विहंगम दृष्टि डाली. हम उड़ने वाले पंछी ही तो थे. किसी ने सच कहा है कि बैंकाक पूरब का वीनस है. जगह-जगह नहरों का जाल, चावल के हरे-भरे खेत, नारियल के झुंड, हरियाली ही हरियाली, किस्मत की लकीरों की तरह फैली हुई सड़कें.

बैंकाक में हमारा विमान एक घंटे के लिए रुका. हमारे बराबर वाला अंग्रेज मुसाफिर किताब पढ़ते-पढ़ते अपना बैग उठाकर चला गया. थाईलैंड की ठिगना कद मेहनतकश लड़कियों का एक झुंड विमान में आया और उसने विमान की सफाई शुरू कर दी. फिर नये मुसाफिर आये. हमारे बराबर वाली सीट पर एक नौजवान जापानी आकर बैठ गया. मगर हमने ठान लिया था कि अब किसी मुसाफिर से बात नहीं करेंगे, लेकिन जापानी नौजवान ने आते ही हमसे कहा, "गुड मार्निंग!" और फिर बातों ही बातों में हम दोनों में दोस्ती हो गयी.

सुअर के गोश्त पर अंडे

विमान बैंकाक से उड़ चुका था और अब कुछ दो-चार हमसूरत न सही, हमसीरत विमान में आन बैठे थे. फिर नाश्ते की बारी आयी और हमारे सामने नाश्ते की ट्रे रखी गयी तो देखा कि सुअर के गोश्त पर दो तले हुए अंडे रखे हैं. हमने एयर होस्टेस से कहा, "बीबी, हम सुअर का गोश्त नहीं खाते. लिहाजा हमारे लिए सिर्फ अंडे ले आओ."

वह बोली, "ऐसी बात है तो अंडे हटा लीजिए, सुअर का गोश्त मैं ले जाऊंगी."

हमने कहा, "मैडम, सुअर के गोश्त पर अंडे रखे हुए हैं. अब हम इन्हें कैसे खा सकते हैं.

एयर होस्टेस ने कहा, "मैं मजबूर हूं. बैंकाक से हमें इसी किस्म का नाश्ता मिला है. हर खाने का डिजाइन और लेआउट यही है यानी सुअर का गोश्त नीचे और तले हुए अंडे उसके ऊपर."

हमारे जापानी दोस्त आइयो को गुस्सा आ गया. बोले, "इतनी बड़ी एयर लाइन एक मसाफिर को खाना भी नहीं खिला सकती?"

इसके बाद हमारे जापानी दोस्त ने अपने बैग में से बैंकाक का एक बड़ा केक निकाला, फिर सूखे बादाम, अखरोट और न जाने क्या-क्या चीजें हमें पेश करने लगे. हर बार कहते, यह मेरी तरफ से तोहफा है. बैंकाक से हांगकांग का सफर तकरीबन तीन घंटे का होता है. इन तीन घंटों में हमारे दोस्त ने खाने-पीने की इतनी चीजें तोहफे में पेश कीं कि हमें जापान आये हुए दस दिन हो चुके हैं और अब तक हम उनके बादाम-अखरोट खाये चले जा रहे हैं. जापानियों की तोहफा देने की आदत के बारे में कभी तफसील से लिखेंगे.

साहबो! हमजबानो! कद्रदानो! होशियार, खबरदार! अपने होशो-हवास पर काबू रखो. अगर तुम्हारे पास शिष्टाचार का दामन है तो उसे मजबूती से थामे रखो. अपना ईमान संभालो. अपने नफ्स को जितना मार सकते हो, मारो. अभी कुछ ही दम में हमारा विमान हांगकांग पर उतरने वाला है. हांगकांग का हाल बाद में लिखेंगे. हममें इस वक्त इतनी ताब है, न मजाल कि हांगकांग के बारे में कुछ अर्ज कर सकें.

क्रमशः

● अनुवाद : लक्ष्मीचंद गुप्त तथा सुषमा सरन.

लंबी कहानी : दूसरी किस्त

कुंवर की दुलहिन

•रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

पिछले अंक में आप पढ़ चुके हैं—

पूरे गांव में 'बड़े घर' के नाम से मशहूर तिवारियों की हवेली जब लाल बुखार जैसी महामारी का शिकार हुई तो पूरे परिवार में दो बूढ़ी सासों के साथ-साथ दो जवान बहुएं भी रंडापा झेलने लगीं. छोटी बहू कुंवर की दुलहिन परिवार की सबसे दबंग और सुघड़ स्त्री थी. जब पिछवाड़े की चाची के घर के सामने चिथड़ों में लिपटी आदम की अधबनी औलादें मिलने लगीं तो कुंवर की दुलहिन से उनके भतीजे रामू के अंतरंग रिश्तों का खुलासा हुआ. पड़ोसन चाची ने रो-झींककर पोटली फिकवायी . . .

—अब पढ़िए इसकी दूसरी किस्त—

रामू कैसे कुंवर की दुलहिन की शैया पर एक रात आ गया और जो न करना चाहिए वह सब कर बैठा, यह सभी उसे जीवित सपना-सा लगता था. पिता और चाचा की मृत्यु के समय वह सत्रह साल का था. चाची ही उसे घर में सबसे ज्यादा चाहती हैं, इसे वह जान चला था. वह अक्सर अपने पास बुलाकर उसे प्यार करतीं, हृदय से लगा लेतीं. घर की पूरी मालकिन वह थीं और सबसे बड़ा मर्द बच्चा होने के कारण रामू सारी वसूली-बाकी उनके हाथ में रखता, खर्च का सारा पैसा उन्हीं से पाता. चाची पूरा हिसाब रखतीं, नौकरों की तनख्वाहें बांटतीं, घर के सारे सामान मंगातीं और सभी के कपड़े-लत्ते दान-पुण्य, धर्मादा की व्यवस्था करतीं. रामू को अधिक से अधिक अपने पास रखतीं. उनकी चार साल की बच्ची जेठानी के जिम्मे थी. घर में सबसे छोटी संतान होने के कारण जेठानी को वह विशेष प्रिय थी. अपनी कोख को सदा के लिए बंद कर जाने वाले मृत पति के पीछे अब वह अपने किसी छोटे शिशु की बात सोच भी न सकती थी, इसमें पाप लगता था. भगवान जब रामू की दुलहिन की गोद भरेगा तभी कोई छोटा बच्चा आंगन में आयेगा.

रामू चाची के सामने अनुगत भृत्य जैसा बना रहता. मुख्तार के साथ सरकारी खजाने में जमींदार के टैक्स भरने दस मील दूर इक्के पर तहसीली जाता. वसूली करने वाले सिपाहियों को किसी किसान का लगान बाकी न छोड़ने की ताकीद वह चाची के हुकुम पर दोहराया करता. चाची को मां से बढ़कर मानता. उनकी बच्ची को अपनी बहनों से ज्यादा प्यार देता. चाची की सारी लिपटनें और झंझोड़नें उसे भीतर-भीतर उद्वेलित तो कर देतीं, पर उनका कोई अन्यथा अर्थ वह न लेता. रात के नौ बजते-बजते बाहर का बड़ा फाटक बंद हो जाता, सब अपने-अपने बिस्तर पर होते. रामू चाची के पास देर तक बैठता, जमींदारी और रेहन, कुर्की, जब्ता कार्यवाहियों की चर्चा करता. बड़े होने पर उसी को दोनों हिस्सों की देखभाल करनी थी. चाची के लिए वह दत्तक जैसा था. पिता की तरह स्वस्थ, लंबा और गोर था—मसें फूट चुकी थीं. एक रात वह जब बातें पूरी करके जाने लगा था तब चाची ने आज्ञाभरे स्वर में कहा, "रामू! यहीं लेटो. आज यहां से न जाओ!"

रामू तब भी नहीं समझा. बोला, "तुम्हारा जी ठीक है न? अम्मा को बुलाऊं?"

"नहीं, तुम्हीं मेरे पास रहो. यहीं सो जाओ!" रामू को विस्मय हो रहा था, यहां दूसरी खटिया भी तो नहीं है.

चाची ने सिरहाने रखी दीपट पर फूंक मारते हुए हुक्म दिया—"मेरे साथ लेटो."

▣

रामू सब समझने लगा, पर सहमता जा रहा था. अंधेरे में ज्यों का त्यों खड़ा था. चाची ने कुछ कड़े स्वर में कहा, "सुनी नहीं मेरी बात. चलो इधर. चुपचाप मैं जो कहूं करो!"

अंधेरे में चारपाई पर पसरी चाची के दोनों फैले हाथों के बीच रामू मंत्र मुग्ध धंसता गया था. चाची उसके साथ यह सब करेंगी, उसने कभी सोचा भी न था. यों बाहर अब उसका मन इधर-उधर चलायमान होने लगा था, पर घर के भीतर चाची के मदीले मनोज्ञ शरीर की इतनी बड़ी संपदा उसके लिए खुल पड़ेगी, उसने कभी कल्पना भी न की थी. . . कदापि नहीं.

अब तो वह रोज दिन-दिन भर रात के आने की बाट जोहता रहता. पर अपनी ओर से पहल करने का साहस उसे न था. जब चाची जो कहतीं, जैसा कहतीं, वही कर सकता था. वह मात्र यंत्र था जो चाची के चलाने पर चलता था और बंद करने पर बंद हो जाता था. विवाह उसका हो चुका था. गौना उन दिनों चार साल में लिया जाता था. कायदे से अभी कुछ महीने बाकी थे. चाची ने एक दिन उसके गाल को मसलते हुए कहा, "तुम्हारा गौना होगा, तब तुम क्या करोगे?"

रामू ने दोनों आंखें चाची की आमोदमुग्ध, पर चिर तृषित आंखों पर गड़ाकर कहा, "जो तुम कहोगी." चाची ने पूछा था, "उसके पास सोयेगा या मेरे पास?"

रामू ने कहा, "जहां तुम कहोगी."

चाची ने उसे झिझोड़ते हुए कहा, "पगला कहीं का, मैं तेरे सुख में कभी बाधक बनूंगी, उसके-तेरे बीच आऊंगी, इस बात को तब याद भी न करना!"

रामू ने कहा, "जैसा तुम कहोगी वैसा होगा. चाची की आंखों में न जाने कैसी विचित्र, विकट मशाल जल उठी थी. रामू के दूसरे गाल को मसलते हुए बोली, "अगर मैं कहूं कि उसके पास तुम्हें बिलकुल नहीं जाना, बोलना-बतियाना भी नहीं है, मेरे पास ही रहना-सोना है, तो. . .?" रामू ने वैसी ही आज्ञापालक दृष्टि से कहा, "तो भी तुम जो कहोगी वह होगा."

▣

कुंवर की दुलहिन ने फिर कुछ न कहा. रामू पर उसकी दर्पभरी प्रभुता कभी-कभी अस्वाभाविक लगने लगती थी, रामू की मां को और दोनों सासों को. पर पुत्रहीना विधवा मां के मन की अपनत्व-भावना ही इसे माना जाता रहा. कुंवर की दुलहिन रामू को जहां बिठाती वह बैठता, जहां जो करने को कहती वह तत्क्षण करता. दोपहर को खाना खाकर वह बाहर जाने लगता तो उसे हुक्म देती—'जाओ, मेरे पलंग पर आराम करो'. यद्यपि वह स्वयं चार घंटे तक नीचे ही घर के काम देखती रहती, दोनों सासों के पास बैठती और विधवा जेठानी के बगल में लेट उनके हाथ-पैर दबाती, सिर सहलाती. रामू के गौने और लल्ली (जेठानी की बड़ी विवाह योग्या बेटी) के विवाह के लिए कहां-कहां लड़के की तलाश चल रही है, सब बताती. मना करने पर भी उनके पैर दबाती. खर्चों का तखमीना लगाया जाता—लड़की इतनी सुंदर है तो लड़का भी सुंदर हो—जोड़ी जंचे, इस पर विशेष आग्रह करती. जेठानी को ऊंघते जान बाहर आकर पूरे घर का जायजा लेती. नौकरानियों को जो काम बताया गया है, वह कहां कैसा हो रहा है, गेहूं, चावल, दाल कूटे-पछोरे जा रहे हैं, कपड़े ठीक-ठीक धोये जा रहे हैं या नहीं, सब देखती. उनके ऊपर के कमरे में अकेला पड़ा रामू सोता, जागता, करवटें बदलता और बिस्तर में भिदी चाची की गसी, सिर को चकरा-चकरा देने वाली गदराई देह की चंपई गंध को पीता रहता. अपराह्न होते जब नीचे आंगन में आता तो पड़ोस की, गांव की बिरादरी की स्त्रियों के बीच बैठी चाची का आदेश मिलता—'गरम दूध का गिलास पूजा के कमरे में रखा है, पेड़े रक्खे हैं, खा-पीकर बाहर निकलो'. सबको हैरत होती—श्यामू, लल्ली, अल्ली, यहां तक कि अपनी सगी बेटी देवा का कभी नाम न लेती—उनकी ओर देखती तक नहीं.

पड़ोसिन चाची रोज की तरह बड़े घर जब शाम को गयीं तो सुना, कुंवर की दुलहिन को पेचिश हो गयी है, अपने कमरे में है. रोज की तरह दुलारी नाउन देह मल रही है. चाची को पता था, यह सारी प्रक्रिया दुलारी करती है—काढ़े तैयार करती है. शरीर को, कमरे को भीतर-बाहर धोती है, बफारा देती है और तरह-तरह की धूनी दे-देकर उनके निर्बल शरीर को तैयार करती है. ऊपर कोई जा नहीं सकता—जिसे दुलारी ले जाना चाहे उसे छोड़कर. दुलारी तीस दिन की

नाउन है और तेल-उबटन से लेकर पेट की नस टर जाने पर पेचिश शुरू होने और उसके उपचार तक कुंवर की दुलहिन की सारी सेवा-सुश्रूषा उसी के जिम्मे है. गांवभर की ऐसी बातें संपन्न करने में दुलारी अच्छी-अच्छी दाइयों के कान काटती है. चालीस साल की भी अभी नहीं है, पर साठ साल की उम्र का अनुभव अपने भीतर भरे है. सारे गांव के भेद वह जानती है. पर कुंवर की दुलहिन की-सी स्त्री उसने भी न देखी है न सुनी. ऐसा पोढ़ापन तो उसने बड़ी-बड़ी हेकड़ीवालिनों में नहीं देखा. इतनी सुकुमार, नाजुक और लचकदार, पर सहने और कड़े से कड़े दर्द में उफ न करने वाली—चट्टान जैसी सख्त—पत्थर.

■

कुंवर की दुलहिन का हुक्म पाकर वह पड़ोसिन चाची को ऊपर ले आयी. दुलहिन पलंग पर शिथिल पड़ी थी. प्रखर गोरा रंग हल्दी जैसा पीला पड़कर केतकी-गर्भ की तरह हो गया था. इस बार खून ज्यादा जा रहा था. दुलारी कहीं से कोई जड़ी ले आयी थी जो घंटे-घंटे भर में चंदन, खस-खस, कद्दू, तरबूज, तथा खरबूजे के बीजों में पीसकर और उसमें गुलकंद घोलकर पिला रही थी. कुंवर की दुलहिन का चेहरा वेदना से तना था—जैसे भीतर कोई घाव यंत्रणा दिये जा रहा हो. पर उसके मुंह से एक कराह तक न निकली थी.

दुलारी ने कहा—"मालकिन की पेट की नस इस बार ज्यादा टर गयी है. खून की पेचिश तो है ही, पेशाब में भी खून जा रहा है. कमजोरी बढ़ गयी है. सब मेवे-मसाले रक्खे हैं, तुम तैयार कर दो. कम से कम दो बार बड़े कटोरे भर दूध के साथ दूंगी. रात को मैं उनके पास रहूंगी.

चाची यही लड्डू बनातीं—सोंठ, गुड़-मेवा के ढोंके कुंवर की दुलहिन को खिलाती आ रही हैं. सब कुछ जानकर भी जबान पर कुछ नहीं लातीं. पर बड़े घर में क्या हो रहा है, यह पूरा गांव जान गया है. दद्दू के ऊंचे, बंगलानुमा बड़े बैठक में आने-जानेवाले सब लोग जान गये हैं कि एक बार फिर रानीकुंवर (उपहास में यही नाम चलता था) का जौहर खुला है. थाने का पैसा जमींदार घर से बंधा था—घी, दूध, दही, अनाज बराबर जाता रहता था. दारू की बोतलों के लिए नगदी जाती थी. और किसी को कुछ कहने की क्या पड़ी थी! पर औरतों के पेट भीतर-भीतर इस घटना की बात करने के लिए फूल रहे थे. उसकी बात करते-करते सोहागिनों (और मुंह ढकी विधवाओं) के शरीर पर फूल उगने लगते, यह कुत्सा उनकी नसों को तरंगित कर देती थी—उन्हें सारी चर्चा के बीच अपनी कुलेलों की आहटें सुनाई पड़ती थीं.

दुलारी जब चार-पांच दिन कुंवर की दुलहिन की ही देख-भाल में लगी रही, तब गांवभर में प्रपंच का अंबार लग गया. पड़ोसिन चाची के जमुना नहाने पहुंचते ही प्रश्नों की झड़ी लग जाती. बड़ी-बूढ़ी पूछतीं और सुवासिनें, बहुएं कान खड़े किये सुनतीं. सास बन जाने पर भी हर साल बच्चा जनने वाली प्रौढ़ाएं हों या पति दर्शन तक से वंचित बाल-विधवाएं हों, रस में डूब-डूबकर सारी बातें कहती-सुनतीं. घाट एक था, पुरुष कुछ हटकर नहाते थे. पर इतनी दूर नहीं कि ललनाओं की बातों की खुली भनक उनके कान में न पड़े. 'इस बार दुलारी को एक मोहर से कम न मिलेगी.' ग्यारह-बारह साल की लड़कियां सब सुनतीं... जैसे दस साल और सयानी हो जातीं. कुंवारिनें भीतर-भीतर दाई बनने लगतीं.

रामू की मां अपवाद के झोंके पहले भी झेल चुकी थी. यह छोटी जब ब्याह कर आयी थी तब इसकी दमकती लुनाई के सामने कुवार की प्रभात की किरनीली लौ कुम्हलाने लगती थी. कली-सी नयी-नवेली उसी के आगे फूटकर गद्दर फूल बन गयी. छोटी को महकभरे गमले जैसी पूरे घर पर मंडराते उन्होंने चार बच्चों की मां होकर भी धूप धोये निर्मल सरोवर की तरह देखा था—उसी पवित्र भाव से देवरानी की सारी चंचल बातें सहन की थीं. रामू मां से क्यों कटा-कतराया रहता है, दुलारी क्यों आती है, क्या करती है, रामू चाची के इशारे पर पालतू पशु-सा घूमता है, यह भी देखती थीं. आखिर छोटी को क्या हो गया है जो लोक-लाज भूलकर खानदानी बड़े घर में ये बुरे काम करती है. विधवा होने के बाद तो उन्होंने और भी दृढ़ता से अपने मृत पति को हिये में धार लिया था—कोई भगत-मुरीद भी अपने साईं को अपने भीतर ऐसी गहरी निष्ठा से न बसाता होगा. ऐसे पूजा-पाठ दान-दक्षिणा वाले कुलीन घर में आये दिन यह सब होता रहता है, कैसे इस पापकुंड से छूटा जाये! नयी बहू के आने पर क्या होगा? क्या तब भी यह जोगमाया घर के बरे-ब्याहे बड़े वंशधर को जपती जायेगी!

▣

पर कुंवर की दुलहिन के सामने वह अकेले में सोची कोई बात बोल ही न पाती थी. कैसा तेज था, उसके शरीर और स्वभाव में...! मस्ती से लहलहाते-किलकते मुख पर और सबसे बढ़कर उसकी सदाबहार हंसी में ठोड़ी के ठीक नीचे लुभावने गड्ढे और उसके बीचों-बीच नीली आग के टुकड़े जैसे झलझलाते बड़े से तिल की मोहिनी में वह बेबस हो जाती थी. लड़की का ब्याह, उसके पहले रामू का गौना होना है और घर के भीतर यह नरक-चौदस! दारुण, निरुपाय आक्रोश से वह कभी-कभी सचमुच जलने लगती. कुंवर न मरता तो क्या छोटी की दुर्नीति यह रूप ले पाती! पति के मरने से अधिक उन्हें कुंवर का मर जाना और इस निर्लज्जा को छुट्टा छोड़ जाना त्रास देता. उनकी सगी सास बिलकुल भोंदू थीं—दंतहीन, बूढ़ी, निपट, बुद्धिहीन. दिन-रात अपनी कोठरी में गुमसुम पड़ी रहने वाली. एक और चाची (जो सारे गांव में 'लालू की चाची' कहलाती थीं) अभी पचपन से अधिक न थीं. रोज जमुना नहाने जातीं और सारे गांव के मर्द-औरतों को जानतीं, बोलतीं, बतियातीं. सभी उनको आदर देते, नहाकर लौटते समय रास्तेभर के माता-मंदिरों में जल चढ़ाती जातीं. कामकाज में सबके घर जातीं. लालू की दुलहिन उनके साथ यथासंभव कम ही बाहर निकलती—कुंवर की दुलहिन का तो घर के बाहर जाने का कभी मन ही न होता. तीज-त्योहार में भी वह जमुना नहाने न जाती थी. लालू की मां ने पांचवें दिन चचिया सास से कहा, "चाची, छोटी पांच दिन से बाहर नहीं निकली. दिन-रात दुलारी और वह... दुलारी और वह!" चाची ने कहा, "इस घर में जो कभी नहीं हुआ वह हो रहा है. न मुझे एक बार बुलाया न तुम्हें. दुलारी... दुलारी.. दुलारी.. .दुलारी! सारा गांव जान गया है, पर कोई मुंह पर तो किसी की कालिख कहता नहीं. इस पाप को काटो हे भगवान!

▣

पड़ोसिन ने भंगिन को जल्द से जल्द आने के लिए भगवान को पुकारा था. चाची भी आये दिन लगने वाले कलंक से त्राण के लिए उसी भगवान को बुला रही थीं. उधर कमरे में दर्द से रह-रहकर अपनी कराह को दबाने वाली रक्त-स्राव मलिन नारी भी यह सब न सह पाने पर भगवान को ही मन में पुकार बैठती है. बीच-बीच में रामू को बुलवाती है. दुलारी बाहर आकर दूर बैठ जाती है, सुनती है, कुंवर की दुलहिन का मर्मभेदी आग्रह—"रामू! तुम्हें मैं चाहे जितना बुलाऊं, पर तुम कभी मेरे पास न फटकना!"

रामू स्थिर दृष्टि से चाची की ओर देखता. चाची ने फिर दर्दीले स्वर में कहा, "वहां क्या खड़ा है? आ मेरे पास, मेरा सिर दबा."

रामू कहता, "अभी तुम्हीं ने कहा था, मेरे पास न आना. तुम्हारा कौन-सा कहना करूं?"

चाची को हंसी आ गयी. यही मोहिनी हंसी तो रामू क्या पूरे परिवार को, गांव-टोले को मोहित किये रहती थी. बीमारी में कुछ दुबली-पतली होकर यह हंसी और हसीन हो गयी थी. बोली, "रात को न आना. अपने कमरे में कितना भी रोकूं, न रुकना. पर अभी तो आ जा."

रामू का मन स्वयं भीतर-भीतर चाची की अंकुराई देह को छूने का हो रहा था. जाकर सिरहाने खड़ा हो गया. चाची ने उसका हाथ अपने माथे पर रख लिया. माथा गरम था. चाची ने कहा, "आले में अमृतांजन रखा है. धीरे-धीरे मेरे माथे पर मलो."

रामू रुचिपूर्वक बाम मलने लगा. चाची ने रामू के उठने के पहले उसका हाथ खींचकर अपने हृदय पर रख लिया. निश्चेष्ट पड़ी आंखें मूंदें जैसे वह इस तरुण सुख में अपनी पीड़ा को भूल गयीं. रामू कब बाहर निकल आया, न उसे पता लगा और न चाची को, जो न जाने क्या सोचती हुई अपने ही अंतराल में धंसी थीं.

रामू ने दुलारी से पूछा, "नाउन चाची! बैदराजजी को दिखा दूं?"

दुलारी ने कहा, "पहले से तो बहुत अच्छी हैं. खून भी बंद है, पर कमजोरी आ गयी है. पीठ कभी-कभी तड़क उठती है. मालिश तो मैं बराबर किया करती हूं."

रामू जानता था, बैद्यराज को बुलाना उसकी मां को, स्वयं चाची को कतई स्वीकार न होगा. पर चाची की सारी चेष्टा उसे कुछ अटपटी लग रही थी. यों उनकी गोरता से फूटता उनका पीला कंचन वर्ण और निखर आया था. वह जानता था, अभी वह न आता तो चाची उसे इसी प्रकार जाने कब तक बिठाये रखतीं. पर दूर बैठी दुलारी, घर के नीचे लोगों का चलना-फिरना आना-जाना! चाची को क्या आज किसी की परवाह न थी!

जेठानी रामू की मां ने इसके पहले देवरानी को इतने दिनों तक अपने कमरे में दिन-रात गोता लगाये न देखा था. दुलारी बैठी उसका पेडू मल रही थी. रामू की मां को देखते ही कुछ अचकचाकर कुंवर की दुलहिन की अधखुली देह को ठीक करने लगी. उस ओर बिना ध्यान दिये रामू की मां ने पूछा, "कैसी तबीयत है छोटी! कब तक ठीक होओगी?"

कुंवर की दुलहिन ने अपने सिर का कपड़ा ठीक करते

पाकिस्तानी लघुकथा

अली वली

▣ नज़र फातमा

ऊंची नाक. चेहरे पर दाग. सिर के बाल खिचड़ी, सोलह बरस का वह गबरू जवान जब हमारे गांव में आया, तो सब लोग उसकी बातें करने लगे.

"कितना समझदार लगता है! जरा-सा भी हंसी-मजाक नहीं है इसमें!"

"मस्जिद से निकलता है तो खेतों में चला जाता है, खेतों से निकलता है तो अपने घर में बैठ रहता है."

एक दिन वह हमारे घर रस का घड़ा लेकर आया. मैं उससे बातें करने लगा.

"तेरा नाम क्या है?"

"अली वली."

"किस जिले का मुजाहिर है?"

"अमृतसर का."

"शहर का है या गांव का?"

"गांव का."

"हमारे गांव में तेरा दिल लग गया?"

"नहीं."

"नहीं! क्यों नहीं?"

"शोर."

"कैसा शोर?"

"मीरासी."

कोई पचास सवाल पूछने के बाद आखिर मुझे इतना पता चल पाया कि उसका बाप बीमार है और किसी रिश्तेदार के पास रहता है. वह अकेले ही जमीन की खोज में हमारे गांव में आया. जमीन तो मिल गयी है, लेकिन मकान मिरासियों के मोहल्ले में मिला है, जो हर वक्त गाते-बजाते रहते हैं.

अली वली एक जन्मजात दार्शनिक था, जिसे कुदरत ने कायनात पर गौर करने के लिए पैदा किया

था. वह जब अपने कंधों पर लाठी रखे धीरे-धीरे चलता हुआ अपने खेतों की ओर जाता था, उसकी आंखें धरती की ओर लगी रहती थीं.

मां-बाप ने मुझे पढ़ाई के लिए गांव से बहुत दूर भेज दिया, जहां से मैं बहुत लंबे अरसे तक गांव नहीं जा पाया. आखिर में, जब धरती ने सूरज के चारों ओर अपने कई चक्कर पूरे कर लिये, तो मुझे अपने गांव जाना नसीब हुआ. अपने घर जाने से पहले मैं अली वली के घर गया. गली के मोड़ पर मुझे गाने और तबले की आवाज सुनाई दी. . .'जालिम लोग, जो किसी को रात को भी आराम नहीं करने देते'. . . .मुझे ध्यान आया. मीरासियों पर मुझे गुस्सा आया. मैंने दिल में कहा, 'अली वली सच कहता था.'

थोड़ा आगे जाने पर पता चला, आवाज तो उसी मकान से आ रही है. मेरे दिल को धक्का लगा. किसी ने उसके घर पर कब्जा तो नहीं कर लिया?

इसी बीच मैं उसके दरवाजे पर पहुंच गया, लेकिन जो कुछ मैंने देखा, उससे मेरी आंखों के सामने तारे-से नाचने लगे.

अली वली एक टाट पर बैठा था. मिट्टी के छोटे-से डिब्बे के मुंह पर चौड़ा-सा रबड़ बांधकर उसने तबला-सा बना रखा था. उसी तबले को वह बड़ी फुर्ती से बजा रहा था. उसने अपना मुंह छत की ओर उठा रखा था और आंखें बंद कर वह गा रहा था :

'आ के देख ले. . .

आ के देख ले रे गम मेरा ओ जाने वाले! . . .'

हैरानी के मारे मेरे हाथ से संदूक गिर गया. खटका सुनकर वह उठ खड़ा हुआ और दौड़ते हुए मेरे पास आया और बोला, "तुम आ गये! कब आये? अंदर आ जाओ. क्या पियोगे? बोलते क्यों नहीं?"

मैं कभी वली की बातें सुनता था, कभी उसकी तरफ देखता था. मुझे अपनी दादी बहिश्तन की बात याद आ गयी. वह कहा करती थी--'पड़ोसी का रूप नहीं आता, अक्ल आ जाती है.' □

● अनुवाद : सुदीप

हुए कहा, "ठीक हूं. परसों तक नीचे आने लगूंगी. आओ बैठो."

जेठानी ने देखा, कुंवर की दुलहिन के मुख पर किसी प्रकार की संकोची हिचक या ग्लानि न आयी. जैसे कुछ हुआ ही नहीं न हो, या जो हो रहा हो वह कोई असाधारणता न रखता हो. लोकोपवाद की लाज-शरम की कहीं कोई झिझक उन्हें न दिखी. जेठानी से जिस प्रकार आंख मिलाये वह बात कर रही थी, उससे एक बीमार, पर निर्भीक तेजस्विता फूटी पड़ती थी. वह जेठानी का अभिप्राय समझ गयी थी. वह अकारण वहां नहीं आयीं, इसके पहले उसकी तबीयत के खराब होने पर भी कभी नहीं. इस कमरे में कोई सहसा आता भी न था. दुलारी संकेत पाकर नीचे उतर गयी. पास रखी मचिया पर जेठानी से बैठने के लिए कहकर कुंवर की दुलहिन आप से आप उठकर बैठ गयी. जेठानी ने तीखे स्वर में कहा था, "मैं बिना बुलाये तुम्हारे कमरे में आ गयी, तुम्हें बुरा तो नहीं लग रहा?"

"बुरा क्यों लगेगा? तुम्हारा घर है, तुम मालकिन हो. जब जहां चाहो आओ-जाओ, मेरा क्या है!"

रामू की मां ने कहा, "सारा गांव रामू का नाम लेता है. उधर तुम इतनी मतवाली हो जैसे आंखों पर चरबी छायी हो!" कुंवर की दुलहिन बोली, "रामू को तुम मुझे दे दो न. मेरे एक वही तो है. लोग अपना-अपना घर देखें. मैं तो उनके किसी मामले में बोलने जाती नहीं."

जेठानी हैरान हो गयी. छोटी कह क्या रही है! कैसी मुंहफट है. लोकलाज मर गयी है. बोली, "रामू तेरा लड़का है, पर क्या इसी सबके लिए. यही सब तू करती जायेगी. कल उसका गौना होगा. सयानी नयी बहू आयेगी. उसके सामने भी तेरी यही लीला चलेगी!"

"यह सब मुझ पर छोड़ दो. कभी घर में पता तक खड़के तो जितना चाहे मुझे मारना. तुम बड़ी हो, मुझे पीटने का तुम्हें हक है. जब न सहन होगा, दुनिया से चली जाऊंगी. देवा तुम्हारे जिम्मे. लल्ली-अल्ली से निपटकर उसे जहां ठीक समझना ब्याह देना."

जेठानी ने खीझकर कहा, "पर तू अपनी कुटेवन छोड़ेगी? नयी बहू के आगे. . ."

कुंवर की दुलहिन ने जेठानी की मचिया खींचकर उसके गले से लिपटते हुए कहा, "अब की बड़ी पीर सही है जिज्जी. रामू को ताकीद कर दी है. . .मेरे पास हरगिज न आना. भगवान न करे अब यह नौबत आये. कसम खा चुकी हूं जिज्जी! अब कुछ न होगा."

रामू की मां ने जोर के साथ देवरानी को अपने से अलग हटाकर कहा, "दूर हटो छोटी. मुझे कुछ नहीं सोहाता. बदनामी की आग में मैं खौल रही हूं. चाची का सिर गांव में आते-जाते जमीन तक झुका रहता है."

कुंवर की दुलहिन की मुद्रा दृढ़ हो आयी. बोली, "गांव के घर-घर की बात मुझसे ज्यादा तुम्हें मालूम है. मैं तो घर के भीतर ही सब लीप-पोत लेती हूं. मेरी जिज्जी भर मुझे अपने चरणों से अलग न करें" कहते-कहते कुंवर की दुलहिन ने उसके दोनों पैर पकड़ लिये.

जेठानी कुछ बोली नहीं. उसका सारा आक्रोश शांत हो चला. बड़ी से बड़ी उत्तेजना में भी छोटी की मदिर मुस्कान उसे चंदन-चांदनी जैसी स्निग्ध कर जाती थी. इतना कष्ट पाकर भी निपूती निगोड़ी वैसी ही लुभावनी, मनभावनी हंसी हंसती है.

▣

साइत निकल आयी और कुछ ही महीने बाद रामू का गौना हो गया. नयी बहू की यह पहली बिदा थी. तिवारियों के यहां विवाह के बाद की बिदा वर्जित थी. लड़की गौना होने पर

ही ससुराल और सोहाग का मुंह देखती थी. नयी बहू शरीर की स्वास्थ्यभरी बाढ़ के कारण उन्नीस-बीस वर्ष से कम की न लगती थी. रोहिणी (यही नाम था) घर की सबसे बड़ी, बाप-मां की अकेली लड़की और अकेले भाई की अकेली बहन होने के कारण सर्वाधिक लाडली थी. पिता गांव में ही मिडिल स्कूल के हेडमास्टर थे. लड़की को उन्होंने घर पर ही पढ़ाया था. रामू कब का पढ़ना छोड़ चुका था और चौथी क्लास तक ही स्कूल गया था. रोहिणी उससे ज्यादा पढ़-लिख गयी थी. सस्वर रामायण का पाठ कर लेती थी. . .भजन भी उसे आते थे.

उन दिनों विवाह के पहले लड़की देखने का चलन न था. विवाह में बहू के हाथ देखकर ही लोगों ने उसके दूधिया गोरेपन का आभास पाया था. जब डोले से उतरकर ड्योढ़ी पार करती हुई आंगन में आयी तो दोनों सासें उसकी भरी-पूरी लुनाई और छवि देखकर मुग्ध हो गयीं. तिवारियों के किसी घर में तब तक तो ऐसी रूपवती बहू आयी ही नहीं, गांव के अगरवालों और ठाकुरों के भी बेजोड़ों में वह एक मानी गयी.

कुंवर की दुलहिन की पुरानी दीप्ति की बात दब गयी. घर में नया उजाला छा गया. कुंवर की दुलहिन बार-बार उसका घूंघट उठाकर मुंह देखती थी, पर जैसे अघाती न थी. उसके उत्साह और उल्लास की सीमा न थी. जिसने जो मांगा, पाया. नयी बहू पर इतना गहना, रुपया, कपड़ा न्योछावर किया कि लोग दंग रह गये. स्वयं रामू की मां को उसका हाथ रोकना पड़ा. पर छोटी ने उसकी बात पर ध्यान न देते हुए कहा, "बड़े भाग से यह दिन आया है जिज्जी. मुझे मत रोको. जी भरकर नेग-निछावर कर लेने दो."

▣

मायके से एकदम निकलकर ससुराल आने वाली लड़की के लिए सब कुछ बदल जाता है. नयी बहू को कोई काम करने न दिया जाता. अकेली अपने कमरे में पड़ी रहती थी. जो चार-छह किताबें स्त्री-सुबोधिनी, भारतीय नीतिकथा, विपत्ति की कसौटी, दुर्गेशनंदिनी आदि अपने साथ लायी थी, उन्हें कई-कई बार पढ़ गयी. समय काटे न कटता था. मायके में लाडली लड़की होने पर भी कुछ न कुछ करती रहती थी. कुंवर की दुलहिन के रामू पर अधिकार में कोई कमी न आयी थी. अलगनी में दोनों के कपड़े एक साथ टंगते, एक साथ धोबी को जाते, घर में धोये जाते. रामू जब खाता, तब चौके में नयी बहू एक ओर बैठी रहती. चाची परोस-परोसकर रामू को आह्लाद की उमंगों में डूबी खिलाती. उस समय आसपास कोई न रहता. नयी बहू कभी-कभी कनखियों से निहारती. चाची का चेहरा उसे विचित्र लास्य से अनुरंजित लगता. खाकर रामू चाची के पीछे-पीछे ऊपर चला जाता. चाची उसे अपने कमरे में लिटाकर नीचे आतीं.

नयी बहू को यह सब बड़ा बिचित्र लगता. अधिकार का यह दर्प भांवरे-फिरी पत्नी को भी अक्सर नसीब नहीं होता. पर जब चाची उसे भी उतने ही पुलकित आग्रह के साथ परोसतीं और उसी प्रकार उसे भी ऊपर ले जाकर अपने कमरे में छोड़ आतीं, तो संकोचवश बाहर देहरी पर ही वह खड़ी रह जाती. चाची उसे कोमलतापूर्वक चारपाई पर बिठाकर रामू से बिना एक शब्द बोले लौट पड़ती. कुछ देर के लिए उनके चेहरे पर एक मुदित पर कुछ-कुछ कठोर अनहोनापन फैल जाता.

एक दिन हिम्मत करके नयी बहू ने चाची से कहा, "मैं अपने कमरे जाऊंगी या नीचे रहूंगी. . . कुछ काम करूंगी?"

चाची ने कहा, "ऐसा कौन बड़ा काम है दुलहिन! करने वाले बहुत हैं. तुम आराम करो. चौके में चली आया करो. गणेश की दुलहिन (एक आश्रित रिश्तेदार बिधवा) बेलती सेंकती है. तुम कढ़ी, खीर, तरकारी, बड़ी, मुंगौरी देख लिया करो.

▣

नयी बहू कुछ न कुछ बोलकर अपने कमरे की ओर अटारी की दूसरी दिशा में मुड़ गयी. चाची के मुंह पर शरारती व्यंग्य झलमलाने लगा. वह भी रोज की तरह नीचे उतर आयी. दोपहरभर नयी बहू अपने कमरे में पड़ी रही, पर रामू न आया. नयी बहू को लगा जैसे चाची की आज्ञा बिना पति उनका कमरा छोड़कर उसके पास नहीं आ सकता. घर के बाहर मर्दाने बंगले में भी नहीं निकल सकता. चाची का बिचित्र दबदबा है. उसकी सगी सास जैसे घर में कुछ नहीं है. सारे लड़के-लड़कियां सभी बातों के लिए चाची का मुंह निहारते हैं.

पहले ही दिन रामू की मां ने कह दिया था, "दुलहिन, घर में जो कुछ है चाची है. जब वह जो कहें करना, घर की जो बात हो उनसे कहना!"

नयी बहू क्या बोलती! मुंह तक आते-आते रह गया—बड़ी तुम हो, घर के दोनों मालिकों की तुम्हीं मां हो. पर सास का बड़प्पन मानकर वह समझी कि पुत्रहीना बिधवा देवरानी के मन को हर प्रकार संतुष्ट-सुखी रखना उसकी सास का धर्म है, वही निबाहती हैं. धीरे-धीरे सास के कहे शब्द की सच्चाई बिजली की लपकती रेख जैसी उसे पग-पग पर उजागर होती दिखने लगी. उसे यह भी लगा कि उसका पति पहले चाची का है फिर उसका. अपने अंतःकरण में उसे जैसे सब साफ दिखाई देने लगा. एक अबिजानित आशंका उसे भीतर-भीतर काटने लगी. क्रमशः

अगले अंक में

एक रोज अचानक कुंवर की दुलहिन अपने पिता के घर चली गयी. आवाजें उठीं—इसके पीछे नयी बहू का हाथ है. असलियत क्या थी? और क्या फिर कभी कुंवर की दुलहिन बड़े घर वापस आयी? इन सवालों का जवाब तलाशती तीसरी और समापन किस्त.

सच का चेहरा

▣ ओ. अलचंद्र दीमालांता

"बेटे, हर किसी के साथ मत सोना. . .ऐसे ही मत सोना. पहले प्यार करना, लेकिन खूब सोच समझकर." मां ने हमेशा उसे यही शिक्षा दी, पर क्या वह ऐसा कर सका? दांपत्य और प्यार की उलझन एक शाश्वत उलझन है, पूरी आदमजात की उलझन है. इसे एक नये अंदाज में प्रस्तुत कर रही है फिलिपींस के जन-जीवन की यह कहानी

स्टीवर्डेस की गरम, लेकिन सीधी आवाज ने, जो यह घोषणा कर रही थी कि हवाई जहाज उतरने ही वाला है, एकाएक झटके से उसकी नींद खोल दी. जहाज भी झटके से ही उतरा. दूसरे यात्री भी यों ही खड़े-खड़े अपनी थकान को तोड़ने में मशगूल थे. फिर वे एक-एक करके जहाज के दरवाजे की ओर बढ़ने लगे. उसने उन्हें निकल जाने दिया. कोई जल्दी नहीं थी. आगमन किसी दूर की ऊंचाई से एक झटके के साथ नीचे उतरने की तरह था, आसमानी ख्वाबों की दुनिया से ठंडी जमीन पर उतरने की तरह. उसकी संज्ञाएं अभी तक नीम-कुंद थीं और बाहर की उजले दिन की रोशनी को समझने के लिए उसे काफी प्रयास करना पड़ा. उसने सोचा, रात होती तो कितना अच्छा होता! या गोधूलि! या प्रभात! धुंधली रोशनियों में, कृत्रिम रोशनियों में घुल-मिल जाना आसान होता है, क्योंकि उनमें आप गुमनाम होते हैं—बल्कि अपना रास्ता बड़ी आसानी से बना लेते हैं. दिन की चकाचौंध कर देने वाली रोशनी में आपके नक्श स्पष्ट हो जाते हैं. आहिस्ता-आहिस्ता वह उठकर खड़ा हो गया और उसने अपने अंगों को आलस्य से मुक्ति दिलाने की कोशिश की. अंततः उसने अपने आपको बाकी बचे यात्रियों के बीच डाल दिया, ताकि वे उसे ठेलते हुए बाहर ले जायें. वे यात्री भी बड़ी सुस्ती से चल रहे थे, जैसे एकाएक उन्हें एहसास हुआ हो कि बाहर जाने का कोई कारण उनके पास नहीं है, जैसे उन्हें

लगा हो, उन्हें तो कहीं जाना ही नहीं है. बार-बार आने वाला वही ख्वाब उसके सामने था, हालांकि दिन की तेज रोशनी और लोगों के आक्षेप ने उसे कुछ धुंधला बना दिया था. अब उसने बाहर देखा. अंततः उसके प्रति जागृत हो उठा—इस नयी वास्तविकता में अब उसे कदम रखना था. स्वप्नदेश से दूर होते जाना था.

कोंबी शटल लोगों से भरी हुई थी—आत्मीय, अपरिचित चेहरों से. वह एक महिला के पास जाकर बैठ गया, जिसने अपने बड़े-बड़े कांचों से उसे ऊपर से नीचे तक तोल डाला. वह मुस्करा दिया. जवाब में वह भी मुस्करा दी. थोड़ी ही देर बाद वे ऐसे बातें कर रहे थे, जैसे एक-दूसरे को लंबे अरसे से जानते हों.

"यहीं रहती हो?"

"नहीं, मुझे कल मोंतिवर्दे में लेक्चर देना है."

"ओह!"

"यू.एस.आइ.एस. के तत्वावधान में. विषय है अमरीकी अनुभव. मुझे इस अनुभव के निर्माण में अमरीकी कविता की भूमिका पर बोलना है."

"रोचक विषय है. पहली बार यहां आयी हो?"

"हां, मैं पढ़ाती हूं, लेकिन इन गर्मियों में मैंने छुट्टी ले ली है. तुम?"

"मैं यहीं पैदा हुआ था. बहुत साल बाद आया हूं. कुछ बदला नहीं है. मेरे लड़कपन का शहर अब भी करीब-करीब वैसा ही है."

▣

इसके बाद एक लंबी चुप्पी छायी रही. इस बीच उसने एक बार ध्यान से महिला को देख डाला, जबकि वह खिड़की से बाहर देखती रही. अमीलिया के बाद हर औरत अनाकर्षक थी. यह सही है, हर औरत को अमीलिया की कसौटी पर कसना गलत था—और यह औरत अपने आप में आकर्षक थी. अगर वह इसे छू ले तो उसे अपने अभाव कम होते महसूस होंगे. वह डूबने से बच जायेगा.

"काव्य में सामाजिक प्रतिबद्धता, तुम्हें इसमें यकीन है, वरना तुमने इस विषय पर बोलना स्वीकार न किया होता."

"मैं यह मानती हूं कि साहित्य जन जीवन से संबद्ध होना ही चाहिए. . ."

"अच्छा. . .मॉड गॉन. . ."

"तुमने, लगता है, काफी कुछ पढ़ रखा है. . . मिस्टर. . ."

"पीटी, पीटी पाचेको. मैं वकील हूं, लेकिन साहित्य भी पढ़ लिया करता था, कॉलिज के दिनों में. हां—मैं अपने वक्त का सामाजिक लेखक था. कैंपस में हमारा ग्रुप था. तब हम लोग रोमांटिक कविता के खिलाफ थे. उंगारेती मुझे पसंद था. उसे जानती हो?"

"हां, रूसी साहित्य मेरा क्षेत्र है. मुझे युद्ध पर उसकी कविता याद है. . .कीचड़ भरी खाइयां, युद्धभूमि पर छाया कोहरा, कोहरे में समंदर का निर्माण करती हुई सर्चलाइटें. . . बेहद खूबसूरत. मेरे खयाल में वही कलाकार सर्वश्रेष्ठ होता है, जो अपने समय को अर्थ और व्याख्या देता है."

"बात यह है कि मेरे पास एक औरत है, एक खूबसूरत औरत."

"तुम्हारी बीवी?"

आखिरी सवाल को उसने खिड़की से बाहर देखते हुए नजरअंदाज कर दिया. वह खिड़की के और नजदीक हो आया, ताकि उसे हवा मिल सके. साथ ही उसने अपनी कमीज के बटन ढीले कर लिये, ताकि चैन महसूस कर सके. वह डर रहा था कि किसी भी क्षण वह दुहरा हो जायेगा. एक बार फिर वह हल्के-हल्के चक्करों में घिर गया था और एकाएक वह पास बैठी महिला का सहारा लेने की इच्छा से भर उठा था और वह एकाएक उसे छूने लगी थी. उसके चेहरे पर चिंता और संवेदना उभर आयी थी. क्या एक और शुरुआत होने वाली थी? महिला ने उसका दायां हाथ थाम लिया. अपना बायां हाथ उसने महिला की ओर बढ़ा दिया—सिर्फ यह जानने के खयाल से कि उसका वह पक्ष अभी तक जीवित था या संज्ञाहीन हो चुका था. खुदा का शुक्र था कि वह अब तक पूरी तरह जीवित था. कुछ देर के लिए वह अपने बायें हाथ से उससे जुड़ा रहा, जबकि महिला उसके दायें हाथ को थामे रही. उसके आसपास की बाकी सब चीजें धुंधली हो चुकी थीं. आखिरकार जब उसकी चेतना से कोहरा छंट गया तो फिर वही अनुभूति एकाएक बिजली की-सी तेजी से उससे टकरायी—उस दूर की दुनिया से, जहां से पलायन संभव नहीं था. अचानक यह महसूस करते हुए कि कुछ गलत हो रहा है, उन्होंने एक-दूसरे को छोड़ दिया और परे सरक गये.

"तुम अस्वस्थ हो?"

"पिछले महीने मुझे दौरा पड़ा था. मेरा आधा भाग एकदम मर गया था. अब ठीक हूं, लेकिन कभी-कभी. . .कोई गंभीर बात नहीं है, लेकिन तब से मेरी बायीं आंख प्रभावित हो गयी है. ठीक से देख नहीं पाती. अब ठीक हूं."

"चलो, फिर से हम उसी बात को आगे बढ़ायें—सामाजिक प्रतिबद्धता की बात को. . . तुम्हें संवेदना के सौंदर्य में यकीन नहीं है—है न?"

"हां, मैं झोंपड़पट्टी में पैदा हुई थी, कल्पना शून्य हृदय."

"यही उम्मीद करनी चाहिए, और दिमाग भी."

"दोनों एक ही हैं—नहीं? संपूर्ण अनुभव, सेक्स की तरह."

"पैंतीस की उम्र के बावजूद मुझे उसका कोई अनुभव नहीं है. तुम यकीन करोगे?"

"हां."

त्वरित उत्तर से उसे थोड़ी नाराजगी, थोड़ी खुशी हुई. अपनी ईमानदारी और भोलेपन में वह बच्चों-सी थी. और यही चीज सामने वाले को निरस्त्र कर देती थी.

"मैंने 'हां' इसलिए कहा, क्योंकि मैं तुम्हारी ईमानदारी को समझ गया था. मैंने देख लिया था कि तुम्हारी हर बात में सीधापन, साफगोई और शिष्टता है."

"अब लंबी सांस लो. . .जी चाहता है, यहां मेरा किसी से प्रेम हो जाये—यहीं, मोंतिवर्दे में. . .लोग कहते हैं, यह

बड़ी रोमांटिक और खूबसूरत जगह है..."

उसे इस साफगोई से झटका लगना चाहिए था, लेकिन लगा नहीं. उसने यह बात ऐसे कही थी, जैसे उसका मतलब कुछ और हो—या वह हर बात बिना झिझक, बिना शर्म कह सकती थी. यहां आग का कोई दरिया नहीं था; अमीलिया की तरह कुछ भी नहीं, डूबने के लिए कोई गहराइयां नहीं थीं, लेकिन वे आंखें जरूर ऐसी थीं, जो हर चीज को देखती थीं और अपने भीतर डुबो लेती थीं. उसके लिए इस क्षण यही काफी था.

"तुमने कहा था, एकीकृत व्यक्तित्व सेक्स पर केंद्रित रहता है?" वह उसी विषय को पकड़कर चल रही थी.

"हां, लेकिन विभाजित जीवन ज्यादा गहरा, ज्यादा समृद्ध होता है."

"तुम्हारा व्यक्तित्व विभाजित है?"

"हां....देख लो. मेरा आधा भाग करीब-करीब मर चुका है."

लेकिन उसका स्वर स्थिर नहीं था, "हमारी जोड़ी भी मजेदार रहेगी, नहीं? एक नौसिखिया, दूसरा गलतियां करने वाला प्रेमी."

कोंबी ने एक और मोड़ लिया—काफी खतरनाक मोड़, लेकिन खतरा उसकी हंसी में डूब गया. फिर एकाएक वह खामोश हो गयी, और तब...

"लेकिन हम लोग पहले बेस तक पहुंच नहीं पायेंगे, शर्त लगाते हो?"

"इतना आत्मविश्वास!"

"मैं सीरियस हूं. तुम्हें सौंदर्य से प्यार है. पत्नी तुम्हारा इंतजार कर रही है....और तुम लड़की फंसाने के चक्कर में हो और मैं असली चीज की तलाश में हूं. बात बनेगी नहीं."

औरत की बात बिल्कुल ठीक थी. और यह बात भी साफ थी कि वह एक ऐसी औरत थी, जिसके लिए वह अपने भीतर कोई लालसा महसूस नहीं कर रहा था. अमीलिया के सामने सब औरतें सपाट थीं, लेकिन इस औरत का स्पर्श और उसकी उपस्थिति इस तरह के व्यक्ति को एक बार फिर पूर्ण होने की अनुभूति दे सकती थी, लेकिन अमीलिया के बाद पूर्ण होना ही कौन चाहता था?

मंजिल आ गयी थी. कोंबी होटल सुल्ताना के सामने रुक गयी थी. वह बाहर निकला और अपने आसपास के अजनबी चेहरों के समंदर को चीरता हुआ आगे निकल गया. होटल की लॉबी में पहुंचकर ही उसे उस औरत का ध्यान आया. कमाल है, उसने उससे विदा तक नहीं ली थी. उसका नाम तक नहीं पूछा था, पर वह अभी वहीं थी और फोन कर रही थी. वह उसकी तरफ सरक गया और इंतजार करने लगा. लगता था, वह भी कुछ देर के लिए उसे भूल गयी थी, लेकिन उसे वहां खड़े और इंतजार करते देखकर उसे भी ध्यान आ गया, "चार बजे मेरा लेक्चर है. उसके बाद मैं फ्री हूं."

"मैं फोन करूंगा. तुमसे मिलकर अच्छा लगा."

और लिफ्ट में वह उसी औरत के बारे में सोच रहा था, जिसने अपनी उम्र के पैंतीस सालों में सेक्स नाम की चीज का कभी सामना नहीं किया था. यह बहुत गरम मुलाकात थी, करीब-करीब सेक्स की ही तरह, और अब चाहे वे दुबारा कभी न मिलें, उसे लगा, उसे इतनी आत्मीयता की अनुभूति हो गयी है, जैसी पहले कभी नहीं हुई थी. छोटी-सी किंतु स्मरणीय मुलाकात थी यह. जैसे वे अकेले में एक दूसरे से मिले हों—अपना एक अंश एक-दूसरे को देते हुए—बड़ी मुलायमियत से, बिना सवाल पूछे. औरत (क्या नाम था उसका) में आत्मविश्वास था, गरिमा थी—गैर-खूबसूरती और साधारणता की गरिमा.

▣

कमरा, इमारत के पश्चिमी हिस्से में कोने वाला कमरा। बिना सजावट का, लेकिन खुला और आरामदेह. छठी मंजिल पर होने की वजह से वहां से नगर का खूबसूरत हिस्सा नजर आता था—पार्क, चलते-फिरते लोग....जीवन का निरंतर प्रवाह. कौन था वह, जिसने कहा था—कोई लंबी कुर्बानी हृदय को पत्थर बना सकती है? सौंदर्य के लिए उसने सब कुछ त्याग दिया था—पत्नी, तीन बच्चे. एक बार फिर उसी हल्की, उड़ती हुई अनुभूति ने उसे घेर लिया, जिसने उसके हाथों और पैरों को चिपचिपे पसीने से सराबोर कर दिया. उसकी बायीं कनपटी में धड़कता हुआ दर्द फिर उभर आया. वह खिड़की से अंदर आती रोशनी से परे हट गया और बिस्तर पर लेट कर तकियों को अपने चेहरे पर दबा लिया—वह संज्ञा-व्यक्ति है, अमीलिया. वक्त के साथ-साथ उसकी संवेदनाएं शिखर की ओर बढ़ती गयी हैं और अब लोग उसके लिए आवाजों, रंगों, स्पर्श, गंधों से ज्यादा और कुछ नहीं रह गये हैं. सौंदर्य का उसका संस्कार अब साधारण प्रातःस्नान ही नहीं है और वह तभी से शुरू हो जाता है, जब वह अपने रेशमी बिस्तर से उतरती है और अद्भुत रंगों और गंधों की दुनिया में खो जाती है—गुलाब, लिली, मजेंटा, गोधूलि का रहस्य....वह किसी पर्वत की तरह इन रंगों और गंधों को जज्ब करती जाती है. पानी का पहला स्पर्श उसके लिए आनंद की तीव्रतम अनुभूति होता है, जो उसके शरीर के प्रत्येक अंग को जागृत करता जाता है. जब वह आदमकद आईने के सामने खड़ी होकर अपना प्रतिबिंब देखती है तो एक अद्भुत रहस्य से भर उठती है—उसकी सारी आग और मखमली शरीर प्रतिबिंबित होता है, सिर के केशों से लेकर मृगछौने जैसे पंजों तक, उसका पोर-पोर एक संज्ञा बन जाता है, हर अनुभूति कामना बन जाती है... तब वह अपने आप में पूर्ण होती है. उसे अपने सौंदर्य से प्यार है; अपने प्रतिबिंब से प्यार है. अमीलिया का अंग-अंग गाता है."

▣

जब पीटी सोकर उठा, तो दोपहर ढल चुकी थी. उसने जल्दी से स्नान किया. हल्का-सा खयाल मन में आया कि वह मोंते-वर्दे जाकर उस औरत से मिले (क्या नाम था उसका?) लेकिन फिर उसने तय किया कि वह होटल के निकट के पार्क में ही टहलने जायेगा—या फिर लोगों की भीड़ के साथ-

साथ बहता रहेगा...कहीं भी न पहुंचने के लिए. आखिर उसने एक मिनिका टैक्सी को रोका और लाहुग की ओर चल दिया, जहां उसका पुराना घर था.

लाहुग पहुंचकर टैक्सी तीन चक्कर लगा चुकी थी, लेकिन वह घर को पहचान नहीं सका. पहचानता भी कैसे! वहां तो तीन-मंजिला मकान बन चुका था. आखिर उसने आसमान की ऊंचाइयों को छूने वाले रिवॉल्विंग रेस्तरां स्काईव्यू में अकेले नाश्ता किया, लेकिन इस वक्त उसकी संज्ञाएं गायिका की ओर खिंच गयी थीं—उस स्थिर केंद्र बिंदु की ओर—अनुभव की एक आत्मकेंद्रित इकाई की ओर: अमीलिया, हां, लेकिन वह भी नहीं...उस मद्धिम, डूबती हुई-सी आवाज ने उसे उस मेज पर ही चिपका दिया था; इसके बावजूद उसके व्यक्तित्व का एक हिस्सा लाहुग वाले पुराने मकान की तलाश में शहर की परिचित गलियों को छान रहा था, जबकि दूसरा हिस्सा उस औरत को याद कर रहा था, जो किसी मादा की तरह सीधी थी और कुछ घंटे पहले राजनीति और सामाजिक आंदोलनों के प्रभाव के बारे में आप्तवचन उगलती जा रही थी.

अगली सुबह पीटी को अपनी आंखें खोलने में दिक्कत हो रही थी; जब धूप ने उसकी आंखों को खुलने पर मजबूर किया, जाग वह उससे पहले ही चुका था. कुछ देर तक उन्हें खुला रखने में उसे परेशानी हुई. आंखें जरा-सा खुलतीं, फिर बंद हो जातीं. उसने अपनी बांह को हिलाने की कोशिश की, लेकिन नाकामयाब रहा. वह पूरी तरह चैतन्य था, लेकिन अपनी अंगुली तक नहीं हिला पा रहा था. फिर जैसे अपने आपको हरकत में लाने में उसे युग लग गये. फोन की घंटी बज रही थी. उस तक पहुंचने में ही उसका दम फूल गया.

फोन उसी महिला का था. वह मोंतेवर्दे से बोल रही थी. और अपनी आदत के मुताबिक, ठीक तीन घंटे बाद सही वक्त पर वह लिफ्ट से उतरती हुई नजर आयी; वह उसे लेने पहुंचा था. वही परिचित मुस्कराहट. वही जरूरत से ज्यादा बड़े कांचों वाला चश्मा. फिर वह उसे दूसरी मंजिल के एक भोजनालय में ले गया.

थोड़ी ही देर बाद वे फिर आत्मीयतापूर्ण ढंग से बातें करने लगे थे, जैसे वे अरसे से एक-दूसरे से परिचित हों. बहुत देर तक, वह यह सोच-सोचकर परेशान हो रहा था कि कहीं बातचीत के दौरान उसने अमीलिया का नाम तो नहीं उगल दिया.

"क्या तुम मुझे अपना प्रेमी बनाना चाहोगी, इस गलत-सलत पुरुष को?"

"क्यों नहीं? उस कच्चे युवक के स्थान पर, क्यों नहीं?"

"अभी?"

"नहीं, आज रात को मैं फिर आऊंगी."

"नहीं ... नहीं, मोंतवर्दे नहीं, प्लीज!"

यह प्रेम-बंधन, प्रेम-मिलन जैसी बात नहीं थी. किसी व्यावसायिक अनुबंध जैसी बात थी. दोनों ने हाथ मिलाया, फिर उठ खड़े हुए. हाथों का वह मिलन जैसे एक संभावित दीर्घकालिक संबंध की शुरुआत थी. फिर वह हॉल से निकल-कर लिफ्ट की तरफ बढ़ गयी. उसे यकीन था कि वह उसे पा लेगा. पागलपन में नहीं, उसे यकीन था कि ऐसी ही कोई औरत उसे उसकी पीड़ा से मुक्ति दिला सकती है. उसे बड़ी धुंधली-सी याद थी कि वह देखने में कैसी लगती थी. छरहरी, खुली छापेदार कमीज और ढीली पैंट में सपाट-सी, फिर भी औरत, अपनी जरूरत को समझने वाली, फिर भी आत्म-निर्भर. उसके शरीर और उसकी तराश में खास कुछ नहीं था, फिर भी वह जानता था, सिर्फ अपनी जरूरत के कारण वह उसे बिस्तर पर ले आयेगा. इस तरह की औरत को टुकड़ों में नहीं बांटा जा सकता—इस तरह की औरत को एक ही घूंट में पूरा निगल जाने की जरूरत होती है.

पांच बजे के करीब वह किसी दूसरे होटल में चले जाने के लिए चेक-आउट कर रहा था और उस औरत के लिए, जो छह बजे उससे मिलने आने वाली थी, काउंटर पर बैठी लड़की के पास एक नोट छोड़ रहा था.

'बुढ़ापे की कमजोरियों और निश्चयहीनता को क्षमा कर देना. तुमसे मिलकर अच्छा लगा.—पीटी'

कुछ मिनट बाद ही वह लौट आया, नोट को उसने मुचड़ दिया और लड़की से बोला कि वह उससे मिलने आने वाली औरत को इतना ही बता दे कि वह होटल छोड़ गया है. जरूरी काम आ पड़ा था.

▣

हवाई जहाज की उड़ान की शुरुआत बहुत झटकीली थी. इसलिए वह अपने गहरे विचारों से बाहर आ गया, लेकिन कुछ ही देर बाद हवाई जहाज मैकटन हवाई अड्डे को पीछे छोड़ चुका था. निर्देश देती स्टुअर्डेस की आवाज की भिन-भिनाहट ने जल्दी ही उसकी आंखों को भारी कर दिया.

उसके चौदहवें जन्मदिन पर मां ने उसे सोने की घड़ी दी थी—और एक जोड़ा सपोर्टर दिया था. जब भी बास्केटबॉल खेलो, बकते रहो. इसके साथ ही मां ने उसके सिर पर हाथ रखकर उसके बालों को बिखरा दिया था.

"कितनी जल्दी बड़े हो गये हो तुम! देखो तो सही! कोई गर्लफ्रेंड भी बनायी है या नहीं?"

"नहीं मां."

बाद में मां की कोमलता, उसकी गंध, उसका उतार-चढ़ाव, उसकी गर्मी...और सुबह की धुंध...सब उसे याद आता रहा था.

"तुम हो और मैं हूं...और कोई नहीं है बेटे, कहीं तुम भी न खो जाना. मैं मर जाऊंगी." पिता की मृत्यु पर मां ने यही कहा था.

"नहीं मां." और अचानक वह अठारह का हो गया था. वह अब भी मां के कमरे में ही रहता था. कोई खराबी नहीं थी—तब तक, जब तक यह एहसास नहीं जागने लगा कि खराबी है. अचानक पड़ोस में एक लड़की आ गयी थी जो उसकी मुक्ति की शुरुआत बन जाने वाली थी. पड़ोस की वह लड़की सीधी-सादी थी, लेकिन उसकी आंखों में अपनापन था; कुछ वादे थे.

"बेटे, हर किसी के साथ मत सोना. ऐसे ही मत सोना. पहले प्यार करना, लेकिन खूब सोच समझकर."

मां ने कहा था, हर किसी के साथ मत सोना, लेकिन वह लड़की 'हर कोई' नहीं थी. वह उसे मां से दूर लिये जा रही थी और यह बड़ी बात थी.

एक पार्टी के तुरंत बाद हुआ था यह. वह उसे अपनी कार में उसके घर छोड़ने जा रहा था और वह उसके इतना पास बैठी थी कि वह उसे मोटल की तरफ ले गयी थी. बस, यों ही. उसके बाद हर चीज धुंधली थी, यद्यपि अब हर चीज उसकी ओर लौट रही थी.

वह उसे घर छोड़ने जा रहा था. उसे अपने आप पर बड़ी शर्म आयी थी और उसने मां को कोसा था. फिर भी उस रात वह उसकी ओर वापस भाग रहा था. वह उसे यह नहीं बतायेगा कि हुआ क्या था, कैसे उस रात, उसने एक लड़की से करीब-करीब सहवास किया था, और इसके बाद वह लड़की मोंतिवर्दे की वह औरत बन गयी थी. वे दोनों एक तरह से उस औरत में ढल गयी थीं, जिससे उसने मां की मौत के बाद शादी की थी और जिसने उसके तीन बच्चों को जन्म दिया था.

पत्नी कभी कुछ नहीं पूछती थी. यह अच्छी बात थी. झूठ नहीं बोलना पड़ता. वह उसे स्वीकार कर लेती—वापस आने पर, बिना सवाल किये उसकी इच्छाओं की पूर्ति में लग जाती, लेकिन बार-बार घर लौटने से वह खुद दुखी हो गया था. वह जानता था, लौटना तो उसे पड़ेगा ही. पत्नी और बच्चे इसी बात से खुश हो जाते थे कि एक बार फिर वह उनके साथ, उनके बीच है. बात गलत तो थी, लेकिन अप्रत्याशित नहीं थी, इसीलिए स्वीकार कर ली जाती थी. फिर उसे, इस घर में, किसी तरह का झूठ नहीं बोलना पड़ता था, कोई बहाना नहीं बनाना पड़ता था. उसे सिर्फ इतना करना होता था कि वह लौटकर आता रहे और उसे आने दिया जाता था—किसी ऐसे अजनबी की तरह, जो इस लायक तो न हो कि उसे घर में रखा जाये, लेकिन जिसे निकाला भी न जा सके, क्योंकि वह घर उसका है.

तगाइताइ से होने वाली उड़ान तेज और धुंधली थी, गुनगुनाती हुई आवाज और तेज हो गयी; वह पांवों से लौट जाने के लिए कहने लगी, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया और फिर थोड़ी ही देर में वह खुद भी गली में आ पहुंचा, कार में बैठा... वह गुनगुनाती हुई आवाज उसे उत्साहित करती रही, उसका पीछा करती रही और अब वह इस भागने से कभी नहीं बच पायेगा. कोई चारा नहीं था. कोई रास्ता नहीं था. सिवा इसके कि आदमी अपनी संज्ञाओं को ही एकाएक बंद कर दे... □

● अनुवाद : सुदीप

सर्दी-जुकाम और फ्लू का हमला और उसका मुकाबला आपके लिए कुछ जरूरी बातें

नर्स नटालिया डिसूजा का बयान है : "सर्दी-जुकाम और फ्लू की पीड़ा से जल्द आराम पाने के लिए एनासिन बड़ी सहायक होती है।"

सर्दी-जुकाम और फ्लू कैसे होते हैं?
ये छूत से फैलने वाले उस विष से होते हैं, जो इन रोगों में ग्रस्त लोगों से हवा में फैलता है। आम तौर से शरीर में उसके मुकाबले की शक्ति होती है। परन्तु ज्यादा मेहनत या कम खूराक के कारण शरीर में कमजोरी आ जाती है और रोग के मुकाबले की शक्ति कम हो जाती है।

रोग लक्षण क्या है?
बदन का दर्द, सर का भारीपन, छींकें आना और नाक बहना, जिसके साथ अक्सर कँपकँपी छूटती है, बेचैनी महसूस होती है और पसीना आता है। उसके बाद खांसी, गले की खराबी, भूख की कमी और थकावट की शिकायत हो सकती है।

क्या इस से और तकलीफें भी हो सकती हैं?
यदि लापरवाही बरती जाये तो निमोनिया और सांस की ऊपरी नाली में छूत का असर हो सकता है।

एनासिन कैसे सहायक होती है?
एनासिन सर्दी-जुकाम और फ्लू की पीड़ा से आराम दिलाती है। एनासिन तेज असर है—क्योंकि इस में वह दर्द-निवारक दवा ज्यादा है जिसकी दुनिया-भर के डॉक्टर सब से ज्यादा सिफारिश करते हैं। एनासिन पर लाखों लोगों को विश्वास है—क्योंकि यह आपके डॉक्टर की दवा की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। सर्दी-जुकाम या फ्लू के पहले लक्षण देखते ही दिन में चार बार एनासिन लीजिए।

आपको और क्या करना चाहिए?
- उबाला हुआ पानी, सन्तरे या मौसंबी का रस और पीने के दूसरे पदार्थ काफी पीजिए।
- पौष्टिक आहार खाइए।
- पूरा आराम कीजिए।
- पानी में ऐंटिसेप्टिक दवा या नमक डालकर गरारे कीजिए।
- कमरों को हवादार रखिए।

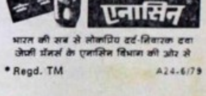

भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा
जेफ्री मैनर्स के एनासिन विभाग की ओर से

* Regd. TM

A24-6/79

घर की चिट्ठी

■ रामदरश मिश्र

"नहीं फेंकू, अब यह सब नहीं चलेगा. अपने मन से छोटेपन की भावना निकाल फेंको. . .अब तुम लोगों के बच्चे यह बर्दाश्त नहीं करेंगे. वे आग लेकर पैदा हो रहे हैं. . ." नीयति से दूर क्रूर स्थितियों को झेलते-झेलते अपने विद्रोह के इस जीवंत पहलू को बहुत-से लोग चीन्हते हैं, फिर भी संघर्ष और चेतना के स्तर पर जड़ें हिलती क्यों नहीं, और क्यों रह जाता है कुएं की मेड़ पर खड़ा आदमी प्यासे का प्यासा. शहर और गांवों के बीच समय और सुविधाओं के तहत जनजीवन के उखड़ते सपनों की मार्मिक गाथा—अहमदाबाद के उत्तर भारतीयों के जीवन-यथार्थ पर आधारित उपन्यास का एक अंश

शंकर आठ बजे क्वार्टर पर लौटा तो घर की चिट्ठी मिली. चिट्ठी खोलने की हिम्मत नहीं हो रही थी. वह जानता था, इस चिट्ठी में क्या होगा. पैसों की मांग होगी, अड़ोस-पड़ोस के लोगों की तरक्की का बखान होगा और बहाने से यह संकेत भी होगा कि पढ़-लिखकर भी वह घर के लिए नालायक ही रह गया. एक से एक अपढ़ लौंडे कमा-कमाकर अपने घर भर रहे हैं, जमीन-जायदाद खरीद रहे हैं, और एक वह है जो अपना ही पेट पालने में लगा हुआ है.

ठीक ही तो कहते हैं घरवाले. मैं घर के लिए क्या कर सका! सात साल से प्राइमरी में पढ़ा रहा हूं. प्राइमरी स्कूल में मिलता ही क्या है! मैं क्या खाऊं, क्या बचाऊं! घर पर खाने-पीने की कमी नहीं है. इतने खेत हैं कि खाने भर को हो ही जाता है, लेकिन केवल खाना ही जरूरी नहीं है न. कच्चा

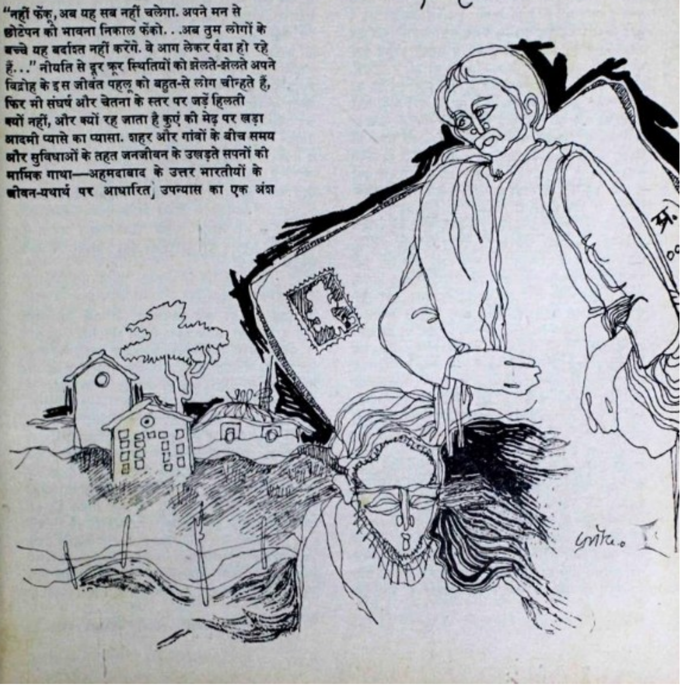

मकान है तो पक्का मकान बनवाना है. एक पक्का मकान है तो दूसरा बनवाना है. अगर कहीं खेत बिक रहा है तो चढ़ा-ऊपरी करके उसे खरीद भी लेना है, नहीं तो घर की इज्जत चली जायेगी. जिसके घर के लोग परदेस में हों, उसके घर पैट्रोमैक्स, कालीन, फोनोग्राम, नयी-नयी दरियां वगैरह वगैरह होनी ही चाहिएं, और जिसके घर के लोग अहमदाबाद जैसे मिलों की नगरी में कमाते हों, उसके यहां अच्छे-अच्छे कपड़े न हों तो शान में कमी आती है. हर खाते-पीते घर के लोग बाहर कमाने वाले सदस्यों से बहुत-बहुत उम्मीदें पालते हैं, और जब उम्मीदें पूरी नहीं होतीं तो वह सदस्य नालायक करार दे दिया जाता है. . .घर में ही नहीं, गांव-जवार में भी उसकी नालायकी की चर्चा होने लगती है. घर पर मां है, दो बड़े भाई हैं. एक भाई गांव के पास ही के मिडिल स्कूल में मास्टर हैं और दूसरे खेती-बारी भी कराते हैं. उनके बच्चे हैं. भाई घर का खाते हैं और कुछ पैसे बचाकर घर दे जाते हैं, और वह जब मुश्किल से कुछ बचा पाता है तब भेज देता है. इसलिए भाइयों की तुलना में उसकी इज्जत कुछ भी नहीं है. उसकी पत्नी और दो बच्चे भी घर पर ही हैं. यह भी एक दर्द है. मां का आग्रह है कि बहू और बच्चों को घर पर ही रहने दो. मैं जानता हूं कि मां मेरी पत्नी और बच्चों को बहुत प्यार करती है और उनसे सेवा भी पाती है. भाभी तो मां को कुछ खतियाती ही नहीं. उनके बच्चे भी उसकी उपेक्षा करते हैं. भाई साहब हमेशा मेरी शिकायत लेकर बैठ जाते हैं, भला-बुरा कहते हैं, तो मां कुछ बोल देती है. इससे वह और भी तीती हो जाती है उन लोगों के लिए. मेरे बच्चों और बीवी की उपेक्षा होती है, इसलिए कि मैं जमकर रुपये नहीं भेज पाता. कभी-कभी पत्नी बेटे से पत्र लिखवाती है—'क्यों हमें यहां मुसीबत में छोड़ गये हैं, हर समय हमें कोंचा जाता है.' क्या करूं? क्या मुझे नहीं इच्छा होती कि बाल-बच्चे साथ रहें. बच्चों की याद सताती रहती है और बीवी प्रायः याद आती है. कभी-कभी तो सूनापन बेहद काटने लगता है. शरीर जोरों से टूटने लगता है. क्या मैं नहीं चाहता कि परदेस में मेरा भी एक घर हो. काम पर से लौटूं तो पत्नी के हाथ की गरम-गरम चाय मिले, ढंग का खाना मिले और बाहर खेलते हुए बच्चे को उठाकर गोद में भर लूं. और जब गुजरात के लोग पूरबवालों पर बोली कसते हैं कि ये सब के सब बाल-बच्चों को छोड़कर चले आते हैं और व्यभिचार फैलाते हैं, तब अपमान से मेरा जी ऐंठ जाता है. मैं भी तो उन्हीं निचले लोगों में से हूं. क्या मैं व्यभिचार फैलाता हूं? ठीक है मैं नहीं फैलाता हूं, तो क्या मैं सभी लोगों का प्रतिनिधि हूं? क्या मैं नहीं जानता कि शरीर की अपनी जरूरत होती है. उस जरूरत को कोई कब तक दबायेगा. मैं दबा लेता हूं तो क्या सभी लोग दबा लेंगे? परिवारविहीन लोग गंध तो फैलायेंगे ही. लेकिन वे क्या करें? पेट की भूख तो सबसे बड़ी भूख है. केवल अपने ही पेट की नहीं, अपने पिता के, मां के, भाई के, सभी के पेट की जरूरत पुरबिहों की जरूरत में शामिल है. वे बाल-बच्चों को साथ लायें तो घर कैसे पैसे भेजेंगे? इसे गुजरात के लोग नहीं समझ सकते, क्योंकि यहां सभी अपनी-अपनी दुनिया बसाते हैं, किसी की जरूरत से उन्हें मतलब नहीं.

मैं चाहता हूं परिवार ले आऊं, लेकिन. . .यहां भी लेकिन . . .वहां भी लेकिन. यहां लेकिन यह कि लाकर कहां रखूंगा. मैं तो दूसरे के क्वार्टर में एक कमरा किराये पर लेकर रहता हूं. और दूसरे परिवार के आने पर तो घर भेजने के लिए कुछ भी नहीं बचेगा. बचने का सवाल ही कहां उठता है, उसका ही खर्च नहीं चलेगा. तीसरे मां अकेली पड़ जायेगी, कोई उसकी देखभाल ही नहीं करेगा. कितना बड़ा मकड़ी का जाला है, जिसमें मैं या मेरे जैसे लोग फंसे हैं. जाले को तोड़ने के लिए जोर मारते हैं. जाला हिलता है तो वे स्वयं थर्रा जाते हैं और जोर मारना बंद कर देते हैं.

घर से शिकायत आती है कि 'उसी नौकरी में और लोग हैं, खुद इसी जवार के पारस हैं जो रुपयों से घर भर दे रहे हैं, और एक तुम हो जो अपने बाल-बच्चों का पेट पालने योग्य पैसे नहीं भेज पाते'. ओह, कैसे-कैसे लोगों से मेरी तुलना की जाती है. पारस. हां, पारस भी लायक आदमी है, बल्कि आदमी नहीं केवल लायक है. . . .सीधा-सादा गऊ. वह भी प्राइमरी में ही टीचर है और वह भी मेरे ही समान उसी चाली में एक कमरा लेकर रहता है. आता ही होगा, दिन भर ट्यूशन करता है, एक वक्त चना खाता है, एक वक्त बनाकर खाता है, उसे और कोई काम ही नहीं है—न पढ़ना न लिखना, न किसी सभा-सोसायटी में जाना. बस स्कूल में पढ़ाता है और ट्यूशन करता है. हर महीने तीन-चार सौ रुपये भेजता है. उसकी एक-एक हड्डी गिन लो, उसके कपड़ों की दुर्गंध सौ कदम दूर से ही सूंघ लो, उसके चेहरे की झुर्रियों को रात में भी देख लो. उसके घरवाले बहुत मजे में हैं, पॉलिटिक्स करते हैं और दूसरों की जमीन-जायदाद के लिए मुकदमे लड़ते हैं.

▣

मुझे सात साल हो गये अहमदाबाद में आये हुए. मैट्रिक पास करके आया था. मैं पढ़ना चाहता रहा, लेकिन घरवालों ने कहा—'क्या पढ़ते ही रहोगे? और कुछ करो-धरो.' पिताजी तब जीवित थे. उनका भी जोर नौकरी पर था और भाई साहब तो फिर दुश्मन ही बन गये थे मेरी पढ़ाई के. उन्होंने ताना भी मारा कि आगे पढ़कर क्या कर लोगे? कलक्टर बनोगे? घर-गृहस्थी का काम करो और कोई नौकरी खोजो. लेकिन मैंने ठान लिया था कि मैं पढ़ूंगा.

किताबें शुरू से ही मुझे ललचाती रही हैं, मेरे भीतर शुरू से ही पढ़ते रहने की तड़प भरी है. मैं कलक्टर बनूं या न बनूं, विद्या प्रेमी जरूर बना रहूंगा. मैं सामान्य और कीचड़ जिंदगी जीने के लिए नहीं पैदा हुआ हूं. मैं अपने जीवन का अर्थ समझता हूं. शुरू से ही इसके अर्थ की छाया मेरे भीतर तैरती रही है. इसीलिए मैं एक दिन अपने दोस्त के पिता का पता लेकर अहमदाबाद भाग आया. कुछ दिन इधर-उधर भटका, किंतु बाद में प्राइमरी स्कूल में मुझे नौकरी मिल गयी. एक सहारा मिला. लेकिन प्राइमरी की नौकरी मेरा लक्ष्य तो

नहीं था. लोग ट्यूशन करते हैं, ट्यूशन पर ट्यूशन करते हैं और अनेक धंधे करके पैसे बटोरते हैं, लेकिन मुझे इधर कभी आकर्षण नहीं दिखा. मुझे लगा कि अब मेरी पढ़ाई का रास्ता साफ है. पढ़ने लगा. प्राइवेट इंटर पास किया, बी. ए. किया और अब हिंदी से एम. ए. कर रहा हूं. फाइनल में हूं. पैसों से किताबें खरीदता हूं, फीस देता हूं, साफ-सुंदर रहने की कोशिश करता हूं. चाहता हूं, यहां का कोई आदमी मेरा रहन-सहन देखकर यह न कहे कि 'भइया' है. भला रुपये कहां बचते हैं कि मैं ढेर का ढेर घर भेजता रहूं और गांव में लायक कहाता रहूं.

▣

शंकर ने एक उसांस ली. चिट्ठी पर निगाह फेरी, कुछ देर तक देखता रहा. खोलने की इच्छा हुई, नहीं खोली. आज तो यों ही मन उद्विग्न था. उस उद्विग्नता में चिट्ठी खोलकर उसे बढ़ाना नहीं चाहता था. उसे लगा कि चाय पीनी चाहिए. उठकर स्टोव जलाया. पानी रख दिया, चीनी डाल दी और वह बैठ गया. सोचने लगा—यह कोई नयी बात तो नहीं है, क्यों चिंता करूं? यह तो प्रायः घटता है. लेकिन हद है गुरुओं की असहिष्णुता की भी और उनकी पेशागत बेईमानी की भी. दुबे साहब एम. ए. के अध्यापक हैं. पता नहीं कब के बने हुए नोट्स हैं, उन्हीं को क्लास में लिखवाते रहते हैं. मैं कभी-कभी हाजिरी के लिए उनकी क्लास में बैठ जाता हूं. नहीं लिखता हूं, चुपचाप कोई उपन्यास पढ़ता हूं. वह बुरा मानते हैं. एक दिन डपटकर बोले, "अरे हजरत, लिखते क्यों नहीं हैं? क्या अपने को बड़ा काबिल समझते हैं? जब नंबर नहीं आयेंगे तो रोयेंगे." मैं केवल मुस्कराया. बोला कुछ नहीं.क्या बोलता! बोलता तो और बुरा मानते. लेकिन वे मुस्कराने से काफी जल गये. उन्होंने पूछा, "आप क्लास में बैठे-बैठे क्या पढ़ते रहते हैं?"

"कुछ नहीं सर, यों ही."

"कुछ नहीं क्यों? कुछ पढ़ तो जरूर रहे हैं." कहकर वे मेरी ओर झपटे और किताब मेरे हाथ से छीन ली, "पतन, अच्छा तो आप 'पतन' पढ़ रहे हैं? ऐसे सस्ते उपन्यास पढ़ने में आपको शरम नहीं आती?" कहकर उन्होंने किताब उठाकर क्लास में दिखायी. कुछ लड़के-लड़कियां हंसने लगे. मुझे भीतर-भीतर बहुत गुस्सा आया. इच्छा हुई कि पुस्तक इनके हाथ से छीन लूं और क्लास के बाहर निकल जाऊं. लेकिन मैंने अपना क्रोध संयत किया और कहा, "सर, यह सस्ता उपन्यास नहीं है, यह कामू का उपन्यास है."

"अरे भाई कामू क्या बला है!" कहकर वे हंसने लगे, जैसे बहुत गहरा व्यंग्य कर बैठे हों. साथ में अनेक घटिया छात्र भी हंस पड़े.

"सर, कामू बला नहीं है, विश्व का प्रसिद्ध अस्तित्ववादी उपन्यासकार है." मैंने कहा और दो-चार और प्रबुद्ध विद्यार्थियों ने आंखों में मजाक का मुस्कान भरकर कोरस के स्वर में कहा, "हां सर!"

"अरे होगा, लेकिन तुम लोगों को अपने कोर्स की चीज पढ़नी चाहिए, कोर्स के बाहर की चीजों को पढ़ने का अभी समय नहीं है."

"सर, अस्तित्ववाद का हमारे साहित्य पर असर पड़ा है, और हमें अपने साहित्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन करते समय अस्तित्ववाद को जानना चाहिए."

"बेकार बात मत करो, जो कहता हूं करो. मैं पंद्रह साल से एम. ए. पढ़ा रहा हूं. मेरे अनभव से लाभ उठाओ." कहकर वे फिर नोट बोलने लगे थे.

आज मैं फिर उनकी क्लास में बैठा था. आज एक पत्रिका में छपा 'नयी कहानी' पर लेख पढ़ रहा था. दबे साहब भी कहानी का इतिहास पढ़ा रहे थे. एक लड़के ने पूछ लिया, सर, स्वाधीनता के बाद की कहानी और प्रेमचंद की कहानी में क्या अंतर है?"

दबे साहब एक पल को ठिठके, फिर विश्वास से मुस्कराये और बोले, "अरे भाई, प्रेमचंद के बाद कहानी लिखी ही कहां गयी है."

पूरी क्लास ठहाका मारकर हंस पड़ी. वे समझे कि सभी लोग हमारे बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर को सराह रहे हैं.

मुझसे नहीं रहा गया. बोला, "आप यह क्या कह रहे हैं सर? प्रेमचंद के बाद जैनेंद्र, अज्ञेय, यशपाल जैसी हस्तियां आयीं और नयी कहानी में तो अनेक अच्छे कहानीकार हैं और आप कह रहे हैं कि प्रेमचंद के बाद कहानी लिखी ही नहीं गयी." शायद मेरे स्वर में रोष भी उग आया था.

"ओ हो, आप नहीं समझे. मैंने यह बात अभिधा में थोड़े कही है. कहानियां लिखी गयीं हैं किंतु प्रेमचंद ने जैसी अच्छी कहानियां लिखी हैं, वैसी फिर नहीं लिखी गयीं. लोग आते रहते हैं, लिखते रहते हैं, उन्हें कोई मना थोड़ ही कर सकता है."

फिर एक ठहाका लगा. दबे साहब को महसूस हुआ कि यह ठहाका बहुत साफ तौर पर उनके खिलाफ मजाक था. एक लड़के ने पूछा, "सर, कहानियां अच्छी लिखी गयी हों तो स्पष्ट होना ही चाहिए."

"क्यों होना चाहिए? क्या कभी यह सवाल परीक्षा में पूछा गया है? मैं आप लोगों को फालतू चीज नहीं पढ़ाऊंगा. इतना समय कहां है अपने पास. और देखिए, मेरे पढ़ाते समय आप लोग फालतू सवाल पूछकर मेरा समय बर्बाद मत किया कीजिए. मेरा मूड खराब हो जाता है. अब जो भी मुझे डिस्टर्ब करेगा, उसे क्लास से बाहर निकाल दूंगा और गैरहाजिरी ठोंक दूंगा.

मैंने चिल्लाकर कहा, "सर, मेरे पास एक पत्रिका है. उसमें यह अंतर स्पष्ट किया गया है. आप चाहें तो आपके पढ़ने के लिए यह पत्रिका दे सकता हूं."

"तुम मुझे सिखाओगे अब. मैं तुम्हें पिछले साल से ही माफ कर रहा हूं. तुम बदतमीज हो, अपने को बहुत बड़ा स्कॉलर समझते हो और कविता भी लिखते हो न. अपने को जयशंकर प्रसाद समझने लगे हो. लो मैं तुम्हारा दिमाग ठीक करता हूं." कहकर उन्होंने तीन-चार दिन की गैरहाजिरी ठोंक दी और रजिस्टर उठाकर बाहर चले गये. मेरी इच्छा हुई कि दौड़कर उनका कालर पकड़ लूं और कहूं कि आइंदा

से मुझे बदतमीज मत कहिएगा, लेकिन मैं जहां का तहां मर्माहत खड़ा रह गया.

यह कोई नयी बात नहीं है और न यह बात दवे साहब के साथ ही है. . .तीन चौथाई प्रोफसरों का यही हाल है, चाहे वे गुजरात के हों, चाहे उत्तर भारत से आये हुए हों. उत्तर भारत से आये हुए लोग भाषा की शुद्धता के बल पर स्कॉलर बन जाते हैं और वे बात-बात में गुजराती प्रोफसरों की हिंदी में गलतियां निकालते हैं. दरअसल, शुद्ध हिंदी बोल लेना न कोई पुरुषार्थ है और न गुजराती के प्रभाववाली हिंदी बोलना कोई अपुरुषार्थ है. एक को हिंदी मातृभाषा के रूप में मिली है, दूसरे को नहीं मिली तो यह अंतर तो होगा ही. असल चीज है ज्ञान, जिसे दोनों को ही अर्जित करना पड़ता है. वह ज्ञान जहां होता है वहां भाषा चाहे गुजराती के प्रभाववाली हो चाहे शुद्ध हिंदी हो, अर्थ से भारी हो उठती है. नहीं तो खोखले वाग्जाल के सिवा और बचता ही क्या है!

▣

डॉ. शर्मा सीनियर प्रोफेसर हैं. उनसे अपना दुख-दर्द कहता हूं. उन्हीं की क्लास में तृप्ति मिलती है. वह जाने-माने साहित्यकार तो हैं ही, अच्छे अध्यापक भी हैं और छात्रों के प्रति अत्यंत सहृदय हैं. वह समझाते हैं कि किसी को छेड़ो मत. जो, जो देता है ले लो या सुन लो. हम लोग सबको जानते हैं लेकिन क्या कर सकते हैं! क्लास न दो तो हल्ला मचाते हैं और क्लास को शुद्ध व्यावसायिक स्तर पर लेते हैं. कुछ पैसों और अनुभव के लिए ही ये क्लास पाना चाहते हैं. इसीलिए बाबा आदम के जमाने के ज्ञान को बने-बनाये नोट्स में बांधे हुए आते हैं और क्लास में लड़कों के सिर पर पटक देते हैं. लेकिन तुम चुपचाप अपना काम करो, नहीं तो अपना ही अहित करोगे.

शर्माजी मेरे भले के लिए व्यावहारिक बात कहते हैं, लेकिन मैं जानता हूं कि वे भीतर-भीतर कितने दुःखी हैं, असंतुष्ट हैं इस सारे परिवेश से. वह भीतर-भीतर विद्रोही हैं, किंतु बाहर-बाहर मुरौवती हैं. मैं बाहर-भीतर को इतना नहीं अलगा पाता. अपने अहित की बात जानते हुए भी फूट जाता हूं, चाहे क्लास हो, चाहे समाज, चाहे परिवार हो, चाहे कवियों का समाज. इसीलिए लोग मुझे घमंडी, बदतमीज आदि समझते हैं. कितनी टकराहट है जिंदगी में. झूठ को आखिर कब तक बर्दाश्त किया जाये? कभी-कभी सोचता हूं अपने को बदलूं.

खल खल खल खल. . .

अरे चाय का पानी तो कब से खौल रहा है. धत्तेरी की, पानी तो आधा जल गया, मुझे पता ही नहीं चला. चलो थोड़ा और पानी डाल देते हैं.

इस बीच पत्र पढ़ लिया. कुछ खास बात नहीं थी. वही पैसों की पुरानी मांग और हालचाल. खेत खरीदने के लिए पैसे चाहिए.

चाय पीकर शंकर कुछ आश्वस्त हुआ तो सोचा कुछ पढ़ा जाये. आजकल उसे मार्क्सवाद पढ़ने का शौक हुआ है. उसे अपने भीतर से ऐसा अनुभव होता है कि यह दर्शन उसके बहुत करीब है. उसे कहीं विश्वास और ऊर्जा दे रहा है. उसने पढ़ना शुरू ही किया था कि किसी के पुकारने की आवाज आयी, "शंकर भाई!" और पारस अंदर घुस आया.

"ओ, पारस भइया! आइए आइए." शंकर का मन तीता हो गया. लेकिन ऊपर-ऊपर हंसने का प्रयत्न करता रहा. पारस के आते ही झक से कपड़ों की एक दुर्गंध कमरे में फैल गयी.

"क्या बात है पारस भइया, बहुत थके दिखायी पड़ रहे हैं."

"नहीं भाई, थका-वका कहां हूं. थकना तो रोज की आदत बन गयी है."

"नहीं, फिर भी आज कुछ विशेष थके दिखायी पड़ रहे हैं."

"नहीं, कुछ खास नहीं. पचास रुपये हों तो दे दो. पहली को दे दूंगा."

"रुपये! ऐसी क्या आफत आ गयी पारस भइया?"

"भाई बात यह है कि घर से चिट्ठी आयी है, कोई खेत बिक रहा है, गांव में चढ़ा-ऊपरी हो रहा है. वह खेत खरीदना है. घर की प्रतिष्ठा का सवाल है. कुछ पैसे जमा थे, कुछ ट्यूशन के इकट्ठे किये, फिर भी पचास रुपये कम पड़ रहे हैं."

"हां भाई, घर की प्रतिष्ठा का सवाल है. जरूर भेजना चाहिए. मेरे घर से भी चिट्ठी आयी है. वहां भी प्रतिष्ठा का सवाल है, लेकिन उनकी प्रतिष्ठा के साथ-साथ मेरी भी तो प्रतिष्ठा का सवाल है. मैं दरिद्रनारायण बनकर उनकी झूठी प्रतिष्ठा की रक्षा करता रहूं, यह तो मुझसे नहीं होगा. आप महान हैं, आदर्श हैं आपके, क्या कहने! मेरे पास पैसे होते तो जरूर देता, लेकिन आप जानते हैं, मैं ट्यूशन तो करता नहीं, पढ़ता हूं और किताबें खरीदता हूं, दस-पांच रुपये बचे हैं सो वे महीने के बचे हुए दिनों की भेंट चढ़ेंगे."

पारस दुखी हो गया.

"पारस भइया, आप थके लग रहे हैं. मैं आपके लिए चाय बनाता हूं."

"नहीं नहीं भाई, चाय तो अभी पी है."

"कोई बात नहीं. आप शाम को खाना तो खाते नहीं, मेरे लिए चाय ही पी लीजिए. कुछ नमकीन भी है, साथ ले लीजिए."

पानी उबलने लगा तो शंकर ने पारस से कहा, "भइया, आपके घर कौन-कौन हैं?"

"माता-पिताजी हैं, तीन भाई हैं, एक छोटी बहन है. मेरे और भाइयों के परिवार हैं."

"और खेत कितने हैं?"

"चालीस बीघे."

"भाई लोग क्या करते हैं?"

"एक खेती कराते हैं. . . और एक जवार में ही हाई स्कूल में पढ़ाते हैं."

"इतने पर भी घर का खर्च पूरा नहीं पड़ता?"

"पूरा क्यों नहीं पड़ेगा, लेकिन सवाल निरंतर विकास का

है न. जर-जवार में धन-दौलत से ही मान बढ़ता है. हमारे घर में आप शहर की अनेक चीज पायेंगे—कालीन, तिरपाल, कुर्सियां, फोनोग्राम, नये-नये छाते, कपड़े, पेट्रोमैक्स, साइकिलें वगैरह."

"और यहां आपके पास क्या-क्या है?"

"यहां रखने की क्या जरूरत?" यहां तो परदेस है. यहां मेरी कौन इज्जत होने वाली है. यहां कौन देखता है."

"क्यों, आप अपनी कोई इज्जत ही नहीं समझते. आप तो शिक्षक हैं, क्या यह नहीं समझते कि यहां आपकी इज्जत का सवाल केवल आपसे ही नहीं, समूचे भारत के लोगों के साथ जुड़ा है. क्या आपको नहीं लगता कि यहां के लोग हम लोगों का रहन-सहन देखकर व्यंग्य कसते हैं."

"कसने दो. उससे हमारी सेहत पर क्या असर पड़ता है! मुझे तो अपना घर-द्वार देखना है."

"आपकी सेहत पर तो नहीं, लेकिन हमारे प्रदेश की सेहत पर अवश्य पड़ता."

पानी खौल गया था. चाय बनाकर शंकर ने पारस को दी, साथ ही प्लेट में कुछ नमकीन भी रख दिया. वह चपर-चपर नमकीन खाने लगा और प्लेट में चाय गिराकर सुर्र-सुर्र सुड़कने लगा, जैसे बैल सानी के भीतर मुंह धंसाकर सुड़कते हैं.

चाय पी चुकने के बाद पारस ने उदास होकर उच्छवास छोड़ा और बोला, "रुपये का इंतजाम नहीं हुआ तो बहुत बुरा होगा."

"हां भाई, बुरा तो होगा, घर की प्रतिष्ठा चली जायेगी. ऐसा कीजिए कि चाली भर के सभी लोगों से एक-एक रुपया घर की प्रतिष्ठा के नाम पर चंदा या उधार मांग लीजिए. लीजिए, एक रुपया देकर मैं शुरुआत कर रहा हूं."

"अरे नहीं शंकर भाई, आप यह क्या कर रहे हैं? आखिरी सप्ताह है महीने का, किसके पास पैसे होंगे?"

तभी तो कह रहा हूं कि एक-एक रुपया मांग लीजिए. सभी दे देंगे. और देखिए इस चाली में अपनी ओर के धोबी और दैनिक मजदूरी पर काम करने वाले बहुत से लोग हैं, उनके पास पैसे होंगे, उनसे इकट्ठा कीजिए. वे दे भी देंगे."

"हां, यह ठीक कह रहे हो. बिलकुल ठीक. कल सुबह यही करूंगा." कहकर पारस चला गया.

शंकर व्यंग्य से मुस्कराया, "वाह रे ब्राह्मण देवता पारसनाथ. . .पाठकजी . घर की प्रतिष्ठा के लिए क्या-क्या कर सकते हैं!"

▣

हवा में शरद के आगमन का आभास मिलने लगा था. क्वार का प्रथम पक्ष चढ़ गया था. भादों की उमस टूट रही थी और वातावरण में एक खुलापन उभर रहा था. बाहर निकलकर घूमना अच्छा लगता था. हवा में पारिजात की हल्की-हल्की गंध भीन रही थी.

सहसा ढोलक-झाल की आवाज गमक उठी. कल रविवार है, लोग मस्ती में आ गये हैं. एकत्र होकर रामायण गा रहे हैं.

शंकर सोच रहा था कि किताब पढ़े, लेकिन बाहर की यह आवाज बार-बार उससे टकरा रही थी.

"शंकर!"

"आओ विनोद."

"चलो यार, क्या कमरे में पड़े हुए हो. . .जरा घूमें. . . कल छुट्टी है."

"यार पढ़ना भी तो है. . .लेकिन चलो."

दोनों निकलकर बाहर आये. कुछ दूर गये कि देखा एक पेड़ के नीचे कोई आदमी बठा हुआ धीरे-धीरे रो रहा है.

"कौन हो भाई?"

वह आदमी कुछ नहीं बोला. धीरे-धीरे सुबकता रहा. शंकर उसके पास बढ़ आया.

"कौन हो भाई?"

"का है मालिक."

"अरे फेंकू? रो क्यों रहे हो भाई?"

उसने अपने फटे कुरते की बहोरी से आंखें पोंछते हुए भरे स्वर से कहा, "कुछ नहीं मालिक!"

"अरे फेंकू, देखो पहले तो यह मालिक-मालिक शब्द मुझसे मत बोलो, और बताओ तो सही क्या बात है?"

"ब. . .ब. . .बात का बताऊं बाबूजी! यह तो अपना करम है, लिख गया है माथे पर. इसे कौन मिटा सकता है. ज. . .जाने दीजिए बाबूजी!"

"विनोद चिल्ला रहा था, "आओ यार, कहां-कहां फंस जाते हो, चलो!"

"तुम जाओ विनोद, तुम्हें जल्दी हो तो."

"ओफ्फो यार, यही तो तुम्हारे साथ दिक्कत है." कहता हुआ वह भी शंकर के पास आ गया.

रामायण गान में शबरी प्रसंग चल रहा था—

'शबरी देखि राम गृह आये

उन ने कहा था

ज्यादातर हिंदुस्तानी फिल्मों के रोने के दृश्यों को देखकर मुझे हंसी आती है.

▣ मृणाल सेन

मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि इतना बदनसीब हूंगा कि मुझे देश का यह पतन देखना पड़ेगा. अफसोस! आज जो कुछ हो रहा है, वह इतिहास का दुखद अध्याय है.

▣ जे. बी. कृपलानी (नवभारत टाइम्स)

कोई किताब पूरी करके जब मैं एक नरक से उबरता हूं तो समीक्षकीय खींच-तान के दूसरे नरक में धंसने की ताकत मुझमें बाकी नहीं रहती.

▣ श्रीलाल शुक्ल (रागदरबारी : संस्मरण)

मुनि के बचन समुझि जिय भाये'

फेंकू हीं हीं हीं हीं रोने लगा. "क्या बताऊं शंकर बाबू, आज घर से चिट्ठी आयी है. माई को बहुत मारा है."

"किसने?"

"गांव के एक ठाकुर जमींदार ने."

"क्यों मारा है?"

"बाबूजी, पहले मैं उनकी हरवाही करता था, उनका कुछ कर्ज हो गया था. उनके द्वारा दी जाने वाली तनखाह पूरी नहीं पड़ती थी. इसलिए उनके यहां से गल्ला-पताई कर लिया करता था. फिर बहिन की शादी पड़ गयी. उनसे सौ रुपया कर्ज लिया. फिर तो सूद में ही मेरी नौकरी बीतने लगी. मैं एक दिन घर से यहां भाग आया और ठाकुर साहब को चिट्ठी लिखवा दी कि मैं यहां कमा-कमाकर उनका कर्ज चुका दूंगा. मेरी माई को परेसान मत करेंगे. लेकिन मेरे पास इतने रुपये कहां कि हर महीने उनके पैसे भेजता रहूं. आखिर घर पर माई है, बीवी है, बच्चे हैं, उनके लिए भी तो भेजना पड़ता है. इसलिए वे अक्सर मेरी माई और बीवी से बेगार कराते रहते हैं. और अक्सर जमीन में से उजाड़ देने की धमकी देते रहते हैं. उन्हें कमी किस बात की है. घर पर बहुत खेती-बारी है और उनके दो बेटे बंक में कमाते हैं. वे खूब रुपये भेजते हैं. लेकिन उन्हें संतोष नहीं. बंक के रुपयों से ही वे धनी बने हैं और ज्यों ज्यों धन बढ़ता गया है, उनका जुलुम बढ़ता गया है.

▣

माई ने चिट्ठी में लिखवाया है कि दस दिन पहले उनके यहां कीर्तन था. हां बाबू, ठाकुर साहब राम के बहुत बड़े भगत हैं. अक्सर कथा-वार्ता कराते रहते हैं, सो कीर्तन था. माई से दिनभर बेगार करने को कहा. माई किसी और आदमी के यहां काम कर रही थी और बीवी मलेरिया में पड़ी थी. मां बेगार पर नहीं गयी. बेगार पर जाती तो शाम को खाती क्या? ठाकुर साहब बेगार करा कर खाने को भी नहीं देते. शाम को माई को पकड़वा मंगाया. . .उधर कीर्तन हो रहा था—'हो रामा हरे रामा, हरे कृष्णा हो कृष्णा,' इधर ठाकुर साहब गालियां दे-देकर माई को डंडे से सड़ाक-सड़ाक पीटने लगे. मां रोते-रोते गिर पड़ी तो लोगों ने छुड़ाया और सबने मिलकर एक गाली दी. . .

अरे ये साले छोटी जाति के लोग अपने को भगवान समझने लगे हैं. . .चौपाई उभर रही थी—

'प्रेम मगन मुख बचन न आवा
पुनि-पुनि पद सरोज शिर नावा
सादर जल ले चरन पखारे
पुनि सागर आसन बैठारे.
कंद-मूल फल सरस अति, दिये राम कर आन
प्रेम सहित प्रभु खायऊ, बारहि बार बखान'

"अरे ये भक्त हैं साले कि राक्षस हैं." शंकर का मुंह क्रोध से विकृत हो गया. उसने अपने गांव में अपनी ही पट्टीदारी में यह दृश्य कितनी बार तो देखा है. इच्छा तो होती है कि ऐसे सारे नर राक्षसों को एक लाइन में खड़ा कर बम से उड़ा दिया जाये. इन लोगों ने जाति-पात, छूत-अछूत, जमींदार-मजूर का भेदभाव पैदा कर आदमी को कीड़े-मकोड़ों से बदतर समझ लिया है. न इनके दिलों में रहम है न प्यार. ये नरक के कीड़े साले खाली पैसा और जाति देखते हैं."

"बाबू हमारे करम में ही यह सब लिख गया है, कोई क्या करेगा! हम लोग नीच कुल में पैदा हुए हैं, अपढ़ हैं."

केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी
अधम जाति में जड़मति भारी
अधम ते अधम, अधम अति नारी
तिनमहं मैं अति मंद गंवारी.

"नहीं फेंकू, अब यह सब नहीं चलेगा. अपने मन से यह छोटेपन की भावना निकाल फेंको. कोई जनम से छोटा-बड़ा नहीं होता. तुम नहीं, वे लोग नीच हैं जो तुम लोगों को जाति और गरीबी का नाजायज फायदा उठाते हैं. लेकिन देखो, अब तुम लोगों के बच्चे यह सब बर्दाश्त नहीं करेंगे. वे आग लेकर पैदा हो रहे हैं. वे समझ रहे हैं कि यह छोटी जाति, बड़ी जाति, अमीर-गरीब की खाई आदमी ने बनायी है, भगवान ने नहीं. भगवान की नजर में सभी बराबर हैं.

कह रघुपति सुनि भामिनी बात.
मानहुं एक भक्ति कर नात.
जाति-पांति कुल धर्म बड़ाई
धन-परिजन गुण गण चतुराई
भक्तिहीन नर सोहहिं कैसे
बिन जल बारिद देखिय जैसे

"ठाकुर साहब के कितने रुपये तुम्हारे ऊपर होंगे फेंकू?"

"बाबूजी, लिये तो सिर्फ सौ रुपये थे, लेकिन सूद-दर-सूद जोड़कर न जाने कितने रुपये हो गये होंगे! सौ से ऊपर तो मैं उन्हें भेज ही चुका हूंगा."

शंकर मन में कुछ सोचने लगा, फिर उसे लगा कि यों अलग-अलग वह किस-किसके लिए सोचेगा. यहां एक फेंकू थोड़े ही है, अनंत फेंकू हैं. सबकी आंखों में घर की एक गहरी अकथ व्यथा-कथा भरी है. लोग यहां भाग-भागकर आते ही हैं इसीलिए.

"अच्छा फेंकू, चिंता मत करो, देखा जायेगा." कहकर शंकर वहां से भारी मन लिए धीरे-धीरे रामायण मंडली की ओर सरकने लगा.

"आइए मास्टरजी आइए, आप भी शरीक हो जाइए."

"हां हां, आ रहा हूं, आप लोग चालू रखिए." फिर वह विनोद की ओर मुखातिब होकर बोला, "आओ भाई, कुछ हो जाये."

"अरे नहीं यार, छोड़ो रामायण-सामायण, चलो घूमते हैं चाहे सिनेमा देखते हैं."

"तो तुम जाओ." कहकर शंकर झटके से मुड़ा और रामायण मंडली में शरीक होकर चौपाई गाने लगा.

अनेक व्यक्तियों के भीतर के छोटे-छोटे राग और स्वर मिलकर एक हो गये थे और उनकी सामूहिक धारा में उनका चिंताओं और परेशानियों से भरा दिन डूब रहा था. □

● आर-38, वाणी विहार, उत्तम नगर, नयी दिल्ली

बर्मा का अनोखा भविष्यवक्ता

▣ सॉ तुन

बर्मी इतिहास कथा

हर देश की किंवदंतियों में ऐसे ऐतिहासिक या काल्पनिक चरित्र अवश्य होते हैं जो अपनी विलक्षण बुद्धि के लिए ही जाने जाते हैं और वे वहां की सांस्कृतिक धरोहर बन जाते हैं. ऐसे ही एक चरित्र से आपको मिलवा रहे हैं बर्मी साहित्य के अध्येता और पेशे से इंजीनियर श्री सॉ तुन.

बर्मा के लोग टोने-टोटकों, शकुन-अपशकुनों आदि में बहुत विश्वास करते हैं. कोई भी घटना घटी नहीं कि वे उसके अच्छे-बुरे होने पर विचार करने लगते हैं. जब भी मेरी मां की दायीं आंख फड़कती, वह मुझे स्कूल जाते समय रास्ते में सावधान रहने के लिए कहती. हमारे शहर में जब नयी फिल्म आने पर सूचना के लिए ढोल-बाजे बजते तो मेरी चाची उसे अराकान के विनाश की पूर्व सूचना मानती हुई होंठों में कोई मंत्र बार-बार दोहराने लगतीं.

किसी बच्चे या बूढ़े के मुंह से निकले शब्द, आसपास की कोई आश्चर्यजनक घटना, किसी लोकप्रिय गीत के शब्द, कोई पुरानी भविष्यवाणी, या किसी धूमकेतु का दिखना—इन सबके आधार पर आने वाली घटना की भविष्यवाणी की जा सकती है. हम बर्मी इतिहास के कुछ ही सौ साल पहले जाकर देख सकते हैं कि कई महत्वपूर्ण राजनीतिक निर्णय इन्हीं टोनों और शकुनों से प्रभावित हैं. हर बर्मी राजा के दरबार में एक भविष्यवक्ता होता था. किसी शाम को अगर किसी बर्मी के साथ आप चाय का प्याला हाथ में लिये और साथ में मूंगफली ठूंगते बैठे हों तो वह आपको कई महान भविष्य-वक्ताओं के किस्से सुना डालेगा. और बतायेगा कि उनका शकुन विचार किस तरह बिल्कुल सही सिद्ध हुआ.

उनमें सबसे महान है आयोदाओ-मिंगला, जो अठाहरवीं सदी में राजा बोराओफ्या के दरबार में था. अब मैं आपको कुछ ऐसे किस्से सुना रहा हूं जिन्होंने उसके नाम को बर्मा में अमर कर दिया.

पीतल की चूनेदानी

1782, जुलाई का महीना. बृहस्पतिवार का दिन. दोपहर बाद का समय. राजा बोराओफ्या के दूसरे बेटे के कान छेदने का समारोह हो रहा था. इस समारोह में शामिल होने के लिए देश के विभिन्न भागों से बहुत से लोग आये थे. इस उत्सव के लिए लगाये गये विभिन्न पंडालों में से एक में दरबार के मंत्रीगण और देश के बुद्धिमान लोग एकत्र होकर साहित्य और इतिहास की चर्चा कर रहे थे.

आयोदाओमिंगला की तो अभी मसें भी नहीं भीगी थीं, पर वह भी इन खिचड़ी दाढ़ी वालों के साथ बहस में शामिल था. जरा ही देर में सब जान गये कि वह कितना पढ़ा-लिखा था और उसे कितनी विस्तृत जानकारियां थीं. सभी के मन में उसके लिए प्रशंसा थी.

सबसे अधिक प्रभावित थे ऊ पी, जो महामहिम सम्राट के प्रमुख सलाहाकार थे. उन्होंने खुले मन से उसकी तारीफ की और फिर बड़े-बूढ़ों की ही तरह उपदेश भी दिया, "मेरे बेटे, अभी तुम हो तो बच्चे, पर तुम्हारा दिमाग परिपक्व है. जो उपलब्धि तुमने प्राप्त कर ली है, वह बहुत बड़ी है. पर याद रखना, तुम्हारी प्रसिद्धि कहीं तुम्हारे दिमाग को फेर न दे."

इसी समय शाही अस्तबल के अधीक्षक ने बातचीत का सूत्र अपने हाथ में लेते हुए कहा, "महोदय, इस बच्चे की और अधिक तारीफ करने की आवश्यकता नहीं है. न्यायालय और दरबार से संबंधित सभी लोगों को इसकी क्षमताएं, इसके विस्तृत अध्ययन और बुद्धि का पता है. फिर भी हममें से बहुत से लोग इसे सिर्फ इसके बारे में उड़ने वाली बातों से ही जानते हैं. अब मुझे एक अवसर मिला है कि मैं इसकी योग्यताओं की परीक्षा लूं ताकि भविष्य में मैं इसके और इसकी योग्यता के बारे में किसी से बात करूं तो अपने अनुभव के आधार पर ही करूं. बेटे, तुम इसका बुरा तो नहीं मानोगे?"

"नहीं काका," आयोदाओमिंगला ने कहा, "आप बेहिचक कुछ भी पूछिए, मैं भरसक उनका जवाब देने की कोशिश करूंगा."

यह जवाब सुनकर शाही अस्तबल के अधीक्षक ने एक पीतल की डिबिया

निकाली, जिसमें वह पान लगाने के लिए चूना रखते थे और कहा, "क्या तुम बिना इस डिबिया को छुए इसका वजन बता सकते हो?"

बहुत मुश्किल सवाल था. कुछ ने तो कहा कि यह सरासर नाइन्साफी है. आयोदाओमिगला ने किसी ऐसे चिह्न के लिए आसपास देखा, जिससे उसे कोई संकेत मिल सकता, पर उसे पंडाल की छत पर लगाये जाने वाले बांस के एक टुकड़े के अलावा और कुछ भी न दिखा.

इसी के आधार पर उसने मन ही मन हिसाब लगाना शुरू किया, "बहुत पहले जब दो विद्वान भिक्षु एक दूसरे की विद्वत्ता की परीक्षा लेने के लिए बैठे तो तब एक ने दूसरे से पूछा—**ता-बिन** और **निट-पिन** (एक और दो)! दूसरे भिक्षु ने सोचा कि **ता-बिन** और **निट-पिन** का योग तो **थोन-बिन** (तीन) होता है. और यदि इसके स्वरों को उलट दिया जाये तो बनेगा **थिन-बोन** अर्थात स्लेट, इस प्रकार वह स्लेट ले आया. अब उसने पहले से पूछा—**तो-जियक-इक?** तो पहले ने सोचा कि यह तो **ता-जियक-औक** का ही रूप है जिसका अर्थ होता है **को-याउक** अर्थात नौ लोग और अगर इसके स्वरों को उलट दिया जाये तो बनेगा **काउक-यो** अर्थात पुआल. इस प्रकार वह पुआल ले आया. अब यहां पर मुझे बांस याने **कुट-वयो** दिखा है. स्वरों को बदलने पर बनेगा, **को-क्युट** याने नौ टिकल (लगभग 170 ग्राम). इस प्रकार इस चूनेदानी का वजन नौ टिकल होगा."

अपना यह अनुमान उस बच्चे ने बताया और माननीय अधीक्षक महोदय ने स्वीकार किया कि उत्तर सही है. साथ ही भेंट स्वरूप उसे एक नयी रोगन की हुई डिबिया दी. और लोगों ने भी उसकी प्रशंसा करते हुए उसे उपहारों से लाद दिया.

सफेद चुहिया

तीन दिन बाद उसी उत्सव में तीन नवभिक्षुकों को दीक्षा दी जा रही थी. सभी महत्वपूर्ण लोग पुनः एकत्र हुए और उन्होंने दान स्वरूप, वस्त्र भोजन तथा धन का वितरण किया. पूरे दिन का कार्य समाप्त हो जाने के बाद वे बैठकर शकुनों और लक्षणों पर विचार करने लगे.

बातचीत में जब वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे पाये तो कर्मचारियों के मामलों से संबंधित मंत्री ने आयोदाओमिगला को बलवा भेजा. उसने आते ही बौद्ध धर्मग्रंथों तथा प्राचीन पुस्तकों का हवाला देते हुए उनकी शंकाओं का निवारण कर दिया. इस बात से उन्हें लगा कि इसकी परीक्षा लेनी चाहिए. उन्होंने चुपचाप एक नौकर को भेजकर संग्रहालय में जन-प्रदर्शन के लिए रखे एक सफेद चूहे को मंगवा लिया और उसे पानदान के भीतर रखकर आयोदाओमिगला से पूछा कि इस पानदान में कौन-सा जंतु है.

आयोदाओमिगला मन में विचार करने लगा. "आज सुबह जब मैं महल के अहाते में आया तो मैंने एक सुवरी को अपने बच्चों के साथ देखा था. सुवर से मिलती-जुलती शक्ल के दो ही पशु होते हैं, हाथी और चूहा. हाथी तो इसमें आ नहीं सकता, इसलिए चूहिया ही हो सकती है. यह बात उसने मंत्री को बता दी. फिर उन्होंने पूछा कि कितने हैं. चूंकि उसने एक सुवरी के साथ दो बच्चे देखे थे तो कह दिया 'तीन'. इस उत्तर पर पूर्वी द्वार के अधीक्षक मुस्कराये और पानदान को खोलते हुए व्यंग्य से बोले, "देखो शकुन विशेषज्ञ, यह तो एक ही है!" पर सभी यह देखकर चकित रह गये कि सचमुच तीन ही थे. पानदान के भीतर ही चुहिया ने दो बच्चे दे दिये थे.

बाढ़ की भविष्यवाणी

एक दिन आयोदाओमिगला और उसके कुछ मित्रों ने मिलकर तय किया कि वे छुट्टी लेकर विभिन्न स्थानों का भ्रमण करेंगे.

जब वे शाही नगर अवा से कुछ ही मील पश्चिम की ओर एक गांव के पास पहुंचे तो उन्हें अपनी ओर एक पागल आता दिखाई दिया, जिसके दायें हाथ में पौध का एक गट्ठर और बायें हाथ में मक्का का गट्ठर था. इसी को शकुन मानते हुए आगामी घटना की भविष्यवाणी की जा सकती थी. गांव में आने वाले खतरे की सूचना के लिए आयोदाओमिगला गांव के मुखिया के पास गया और आदरसूचक बर्मी संबोधन का प्रयोग करते हुए कहने लगा, "हे मठों के निर्माता, हमारी इस परिवर्तनशील दुनिया में अच्छी और बुरी दोनों तरह की ही घटनाएं घटती हैं और इन घटनाओं के शकुन और चिह्न पहले से ही दिखने लगते हैं. अब उस पागल को ही देखिए जो पौध और मक्का लेकर आपके गांव से जा रहा है. ये चीजें बृहस्पतिवार से संबंधित हैं, और वर्षा से भी. हम पुरानी भविष्यवाणी को तो जानते ही हैं. 'पांच दिन का तीन गुना, अधिक पानी से सब कुछ नष्ट हुआ.' यह चिह्न बताता है कि समय आ गया है. पंद्रह दिन बाद आकाश से भयंकर वर्षा होगी और नदी के किनारे के सभी नगर नष्ट हो जायेंगे, इसलिए सभी लोगों को चाहिए कि वे अपने घर छोड़कर सुरक्षित जगहों पर खिसक जायें." (मक्की को बर्मी भाषा में प्याउंग कहते हैं जिसका एक अर्थ सिखकना भी होता है)

जिन्होंने उसके अनुमान पर विश्वास किया वे तो घरों को छोड़कर चले गये और अविश्वासी वहीं रह गये. जैसा कि उसने कहा था, सोलहवें दिन उत्तरी बर्मा में भयंकर वर्षा हुई और इरावदी नदी किनारों पर उफन गयी और फलस्वरूप कई लोग मर गये और भीषण विनाश हुआ.

जब अंग्रेज बर्मा आया.

आधी सदी के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी की कृपा से ब्रिटिश साम्राज्य बड़ी तेजी से फैलने लगा था. फलस्वरूप पानी में चलने वाले जहाजों की मांग बहुत बढ़ गयी. इंग्लैंड के `गल तो खत्म हो गये थे, पर छोटा-सा बर्मा तो टीक के जंगलों से लदा था. टीक अच्छी मजबूत लकड़ी होती है और ब्रिटिश नौसेना के जहाजों के बनाने के लिए तो यह सर्वथा उपयुक्त थी. बर्मी राजा मुफ्त में टीक देने के लिए तैयार नहीं था. उसने निर्यात शुल्क लगा दिया.

पर कंपनी तो देना ही नहीं चाहती. देती भी क्यों. बर्मी लोग तो टीक का प्रयोग करते ही नहीं थे. और फिर यह इतनी भिकदार में वहां थी कि थोड़ा-सा ले जाने पर किसी का कोई नुकसान नहीं होने जा रहा था. असल में तो सांपों से भरे इन जंगलों का साफ किया जाना बर्मियों के हित में ही था. इस पर कर लगाना तो मूर्खता है. इस गुस्ताख बर्मी राजा को तो सबक मिलना ही चाहिए. इसलिए 1795 में या इसी के आसपास बर्मी राजा के नाम एक छोटा-सा शिष्ट पत्र भेजा गया—नदी घाटी के आसपास का जंगल छोड़ दो वरना. . .(कभी-कभी मैं सोचता हूं कि अगर बर्मा में टीक के जंगल न होते तो वह शायद गुलाम बनता ही नहीं.)

इस पर बर्मी राजा काफी परेशान हो गया. वह सोच ही नहीं पा रहा था कि क्या किया जाये, उसने आयोदाओमिगला और अन्य मंत्रियों को तत्काल बुलवाया. राजा पत्र को उन मंत्रियों के सामने व्यग्रता से घुमाते हुए उनसे पूछने लगा, "अब बताओ, मैं क्या करूं. क्या मैं उन्हें पूरा नदी घाटी का क्षेत्र दे दूं या फिर अपनी सेना तैयार करूं."

"महामहिम," आयोदाओमिगला ने जवाब दिया, "जब मैं मध्यद्वार से आ रहा था तो कुछ लड़के नाटक का खेल खेल रहे थे. और वे ये गीत गा रहे थे :

अच्छे बच्चे,
दुश्मन को देखकर तैश में मत आओ
तुम्हारी परिपक्व बुद्धि ही तुम्हें बतायेगी
कि वह तोंदियल न्गा-सी-बु तो
एक क्षण भी न टिक पायेगी
यदि तुम चलाओगे उस पर
चांदी की गोलियां.

इसके पहले हिस्से का अर्थ है कि दुश्मन को देखते ही युद्ध मत शुरू करो बल्कि अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पहले सोचो. न्गा-सी-बु (एक बड़ी मछली, जिसका पेट काफी बड़ा होता है) का यहां पर अर्थ है, समुद्र मार्ग से ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने वाले लोग. तोंदियल का अर्थ है अंग्रेज लोग जो दूसरे देशों से लड़ने और जीतने पर भी संतुष्ट नहीं हो रहे हैं. दूसरे देशों को पाने की इच्छा उस मछली की तोंद की तरह है जो कभी भर ही नहीं सकती. ऐसे दुश्मन को तभी वापस किया जा सकता है जब उस पर चांदी के शस्त्र से वार किया जाये."

आयोदाओमिगला की इस व्याख्या को सुनकर राजा ने उस अंग्रेज को एक लाख चांदी के सिक्के दिये. उसने चुपचाप उन्हें लिया और वापस चला गया. □

मलयेशियाई पुराणकथा

विधाता ने पूछा

विधाता ने पहले मानव आकृति की रचना की. इसके बाद उसे जीवन और प्रकृति, इच्छा और चरित्र, मस्तिष्क और आत्मा जैसी दैविक शक्तियां प्रदान कीं, इस प्रकार आदिमानव का जन्म हो गया.

तब विधाता को लगा कि अकेला मानव पृथ्वी पर आबादी नहीं बढ़ा सकता. मैं इसे एक पत्नी दूं, जिसके साथ यह रमण कर सके, सोचकर विधाता ने औरत के शरीर को आकार देना शुरू किया.

उस आकृति में जैसे ही जीवन आया, वह दुनिया के किसी भी जीव के मुकाबले अत्यंत मोहक और प्यारी थी. अपनी वह सर्वोत्कृष्ट कृति विधाता ने आदिमानव को सौंप दी.

कुछ ही दिन बाद मानव विधाता के पास पहुंचकर बोला, "भगवन! आपकी दी हुई औरत ने मेरी जिंदगी में जहर घोल दिया है. वह बोलती है तो रुकने का नाम ही नहीं लेती. जब देखो, तब मेरा समय बरबाद करती रहती है. झगड़ती है तो छोटी-छोटी बातों पर और जब देखो, तब बीमार रहती है." तब विधाता ने उससे अपनी भेंट वापस ले ली. मुश्किल से अभी एक हफ्ता भी नहीं बीता था कि मानव पुनः विधाता के पास आकर बोला, "भगवन! जब से आपने औरत को वापस लिया, मैं बहुत परेशान हूं. वह हमेशा गाती रहती थी, नाचती थी. न जाने कितनी बार उसने मुझे मुग्धदृष्टि से देखा और बड़ी पटुता से मेरा चुंबन लिया. हम कितनी प्रसन्नता से तरह-तरह के खेल खेला करते थे. उसने कई बार मेरी रक्षा भी की." सुनकर विधाता ने औरत पुनः उसके साथ कर दी.

तीन दिन भी नहीं बीते थे कि मानव फिर विधाता के सामने शिकायतों का पुलिंदा लिये खड़ा था.

"भगवन्! समझ में नहीं आ रहा कि मैं करूं भी तो क्या? बड़ी सावधानी से मैं संबंध मधुर रखने की कोशिश करता हूं तो भी यह मुझे आनंदित करने की अपेक्षा परेशान ही अधिक करती है. कृपया मुझे इससे मुक्त कीजिए."

तब विधाता ने फिर पूछा, "क्या तुम इसके बगैर रह सकते हो."

"भगवन्! मुश्किल तो यही है कि न तो मैं इसके साथ रह सकता हूं और न ही इसके बगैर." मानव ने अपना सिर पकड़कर बड़ी उदासी से जवाब दिया. □

थाई कहानी

वर्षा की रानी

वर्षा का होना या न होना भौगोलिक कारणों पर निर्भर करता है पर मुआंग कस्बे के उन भोले किसानों को क्या कहें जो समझते हैं कि बिल्ली को पूजा करने से वर्षा आयेगी. इसके लेखक श्री प्रतुम्रथ जॉंग का जन्म थाइलैंड में अबोल जिले में 1918 में हुआ और बैंकाक व न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में इन्होंने शिक्षा पायी. द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ये अमरीकी सेना में अनुवादक भी रहे.

• प्रतुक्सथ ज़ैंग

थाइलैंड के मुआंग कस्बे के एक उत्तरी गांव के हमारे घर में एक बिल्ली थी उसका नाम था साई स्वाडं. यह मेरे पिताजी के एक दोस्त ने मुझे भेंट में दी थी. तब मेरी उम्र पांच साल की थी. उसकी नीली आंखें मन के भीतर तक पैठ जाती थीं. अपने मुलायम गहरे भूरे बालों को वह हमेशा अपनी जीभ से चाट-चाटकर साफ करती रहती थी. मैं तो जैसे उसी के लिए समर्पित था. उसे हमारे घर के सभी लोग बहुत प्यार करते थे. पर अभी तो उसे पूरे जिले में ही मशहूर होना था.

1925 के सूखे की तो साई स्वाडं नायिका ही थी. उसे वर्षा की रानी चुने जाने का सौभाग्य जो मिला था.

उन गर्मियों में तीन महीने तो एक भी इंच वर्षा नहीं हुई. गर्मी बहुत थी और सूखा भी. पोखर तो सूखकर कीचड़ हो रहे थे और नदियों में पानी के निशान भर दिखते थे. पेड़-पौधे पूरी तरह सूख गये थे. जब हमारे पशु मरने लगे तो हम उन्हें उत्तर में यून नदी के किनारे ले गये. लगता था कि उस साल खेती करना असंभव होगा.

हर रोज गांव वाले बौद्ध मंदिरों में इकट्ठा होते और वर्षा के लिए प्रार्थना करते. पूरे दिन बौद्ध पुजारी आकाश से वर्षा के लिए मंत्र पढ़ता रहता.

तब किसी ने सलाह दी कि हमें पुराने जमाने वाला वर्षा अनुष्ठान, जिसका नाम—नांग माओ याने वर्षा की रानी है, करना चाहिए. और एक दिन एक वृद्धा इस काम में सहायता मांगने के लिए मेरे पिताजी के पास आयी.

उस दिन पिताजी मेरे पास आये तो वे बहुत गंभीर थे. उन्होंने बड़े धीरे-से साई स्वाडं के सिर पर हाथ फेरा और मुझसे कहने लगे, "आई नू (मेरे प्यारे नन्हें चूहे), गांव वालों ने वर्षा-उत्सव मनाने के लिए मेरी सहायता मांगी है. मैंने उन्हें अनुमति दे दी कि वे हमारी बिल्ली—साई स्वाडं को ले जा सकते हैं.

मैं सन्न रह गया. वर्षा के लिए वे मेरी बिल्ली को कैसे ले जा सकते हैं. मेरे दिमाग में अचानक चीनियों के वार्षिक श्राद्धों के दिन घूम गये, जब वे अपने पितरों की याद के सम्मान में मुर्गे को काटकर उबाला करते थे. तो क्या वे मेरी बिल्ली को भी काटकर उबालेंगे? कभी नहीं!

मैंने लगभग चिल्लाते हुए कहा, "बिल्कुल नहीं, पिताजी, मैं किसी को अपनी साई स्वाडं पर हाथ नहीं लगाने दूंगा. वर्षा आये या न आये, मुझे कोई चिंता नहीं है."

चित्रांकन : हरिप्रकाश त्यागी

थाई परिवारों में पिता ही घर का सर्वोच्च स्वामी होता है. उसकी किसी बात से इनकार करना अक्षम्य माना जाता है. उन्होंने एक ठंडी नजर मुझ पर डाली और शांत स्वर में कहा, "बेटे, कोई तुम्हारी साई स्वाडं को मार थोड़े ही रहा है. बल्कि हमारी बिल्ली तो गांव की सबसे सुंदर और साफ-सुथरी बिल्ली है, इसी कारण उसे लोगों ने इस जिले की वर्षा की रानी चुना है. यह तो उसके लिए और हमारे परिवार के लिए सम्मान की बात है.

मैं अपनी बात पर अड़ा हुआ था. अंत में पिताजी ने कहा, "जैसे ही यह उत्सव खत्म होगा. तुम अपनी बिल्ली को घर ले आना."

▣

उसी शाम को मंदिर को अहाते में गांव के बूढ़े मुखिया ने घोषणा की कि अगले दिन दोपहर बाद नांग माओ उत्सव शुरू होगा.

अगले दिन सुबह गांव के सभी लोग मंदिर के अहाते में गये. स्त्रियां अपने चमकदार नीले फा-सिन (स्कर्ट के किस्म का वस्त्र) और सफेद ब्लाउजों से सज्जित थीं. और पुरुष सफेद पाजामे और कुइ हैंग (कमीजों की किस्म का वस्त्र) पहने थे. सभी छोटे-बड़े बच्चे नये साफ कपड़े पहने थे. वे अपने माता-पिता के साथ-साथ चल रहे थे. दो शिल्पियों ने बांस का एक बड़ा-सा पिंजरा बनाया था जिसे फूलों और पत्तियों से इस तरह सजा दिया गया था कि एक छोटा-सा महल लगने लगा था.

दोपहर को हमारी बिल्ली साई स्वाडं ने रोज की तरह का खाना—मच्छी और चावल खाया. उसे मंदिर के अहाते तक पहुंचाने का सम्मान मेरे पिता ने मुझे ही दिया. कुछ बूढ़ी औरतों ने उसे कंघी की और उसके सिर पर खुद तैयार किया हुआ पारंपरिक इत्र छिड़का. उसने पूरी ताकत लगाकर इसका विरोध किया. वह भागने के लिए छटपटायी और मुझे उसे उसके लिए बनाये गये अलंकृत पिंजड़े में रखना पड़ा. हां, पिंजड़े में जाते ही वह एकदम शांत हो गयी, जैसे अपनी भूमिका के लिए तैयार हो गयी हो और फिर पांवों के बीच में सिर घुसाकर सो गयी.

बौद्ध पंडित ने आकर उसके ऊपर पवित्र जल के छींटे मारे, पर वह उसी तरह सोती रही.

चिलचिलाती धूप और गर्मी के बावजूद लोग वहां पर वर्षा की रानी साई स्वाडं को देखने और वर्षा के लिए प्रार्थना करने के लिए ठसाठस भरे थे. फिर वे उस पिंजड़े को उस खूबसूरत विशालाकार मंदिर में ले गये, जहां पर पुजारी भगवान बुद्ध की मूर्ति, प्रा कांथाराज (वर्षा के लिए प्रार्थना करती भगवान बुद्ध की मूर्ति) के सामने मंत्रोच्चार करने लगे. और फिर जैसे ही बड़े पुजारी ने पिंजड़े के पास एक मोमबत्ती जलाकर पवित्र पाली भाषा में लंबी तान के साथ प्रार्थना शुरू की, उस बेचारी स्वाई स्वाडं के ऊपर पवित्र जल छिड़का जाने लगा.

बीच दोपहर में धूप इतनी तेज पड़ रही थी कि लोग अहाते में लगे आम और पो वृक्षों की छाया में चले गये. लोगों का एक समूह नांग माओ गीत गाने लगा. पहले धीरे-धीरे, फिर आवाज तेज होती गयी, और फिर जैसे हर व्यक्ति चीख रहा हो. पुराने देशी ढोल, तुरहियां उस गीत के साथ स्वर मिलाने लगीं. लोग गाने के साथ-साथ नाचने लगे.

मां, पूसी मां, बरखा दे आकाश से
जिससे अमृत हम बनायें
मां पूसी के लिए चांदी चाहिए
मछली चाहिए, शहद चाहिए
मिला न हमको यह सब तो बरबादी होगी
ऐसा मतकर कि विधवा अपना बच्चा बेचे
सबको मिले सफेद धान
खुशियों के लिए हमें चाहिए सोना और चांदी
हमें खरीदना है केला
हमें पुजारियों और लोगों को देने के लिए अनाज चाहिए
हमें दिखा बिजली की चमक, और बरखा की बूंदें दे दे.
बरखा की बूंदें दे दे.

इस सारे उत्सव के देखते हुए मैं बहुत उत्तेजना महसूस कर रहा था और रानी की ताकत पर जैसे मुझे विश्वास होता जा रहा था.

साई स्वाडं अपने अलंकृत पिंजड़े में अभी तक सोयी हुई थी. इस सारे शोर और मंत्रों से उसे कोई मतलब नहीं था. तभी दो व्यक्ति उसके उस छोटे से महल के पास आये और उसे कंधों पर उठाकर मंदिर से बाहर निकल गये. उनके पीछे सारी भीड़ भी बाहर आ गयी. अब बाकायदा एक जुलूस बन गया था. जिसके आगे-आगे ढोल और तुरही-वाले चल रहे थे. वे ढोल काफी जोर-शोर से बजा रहे थे. और लोग उनके साथ स्वर मिलाते हुए गीत गा रहे थे. कुल मिलाकर काफी शोर हो रहा था. ढोलचियों के पीछे-पीछे थाई लोकनृत्य के परिधान पहने नर्तकों का एक दल चल रहा था. यह सब जैसे वर्षा की रानी के सम्मान के लिए प्रदर्शन-सा था.

यह जुलूस बाजार की ओर चला. अब इसका आकार काफी बड़ा हो गया था. सभी नांग माओ गीत गा रहे थे. जब ये एक संकरी गली में से गुजर रहे थे तो लोगों ने इन्हें खाना दिया और पानी पिलाया. कुछ लोगों ने वर्षा की रानी को उठाने वाले उन दो कहारों को चावल और शराब दी. दोनों ने रानी का अभिवादन करते हुए शराब पी. इस खाने और पीने का मतलब वर्षा की रानी को यह बताना था कि हमारी धरती ऐश्वर्यमय है, इसीलिए वर्षा की देवी को चाहिए कि हमें भरपूर पानी दे ताकि हमारा ऐश्वर्य बना रहे.

साई स्वाडं पूरे रास्ते सोयी रही. इस सारे प्रदर्शन का उस पर कोई प्रभाव ही नहीं था. जब हम खुले बाजार में पहुंचे तो वहां काफी शोर था. कुछ लोग आतिशबाजियां और पटाखे छोड़ रहे थे. पाउडर और इत्र का व्यवसाय करने वाली कुछ महिलाएं पिंजरे के निकट आयीं. उन्होंने बेचारी वर्षा की रानी पर प्याला भर सुगंधित इत्र और फूल छिड़क दिये. मंत्रोच्चार और पटाखों का भारी शोर और सुगंधित

पानी का छिड़काव. . .यह तो अति हो गयी थी और लोग थे कि सुगंधित पानी छिड़के ही जा रहे थे. अब तो साई स्वार्ड उठ खड़ी हुई और अपनी नीली-नीली आंखों से अपराधियों की ओर देखने लगी. उसके मुलायम भूरे बाल बुरी तरह भीग गये थे. वह बुरी तरह चिल्लाने और पिंजड़े से भाग निकलने का असफल प्रयास करने लगी.

स्थिति को और अधिक बिगड़ते देख मैं लगभग चिल्लाता हुआ पिताजी से बिल्ली को बचाने के लिए कहने लगा. पिताजी ने मुझे समझाया कि सब कुछ ठीक हो जायेगा. थोड़ी ही देर में इत्र चढ़ाने का काम निपट गया और सब लोग एकदम चुप हो गये जैसे वर्षा की रानी का गर्जन सुनना चाहते हों. लेकिन साई स्वार्ड ने भी चिल्लाना बंद कर दिया. वह बुरी तरह भीगी हुई थी और डर से कांप रही थी.

अब यह जुलूस मंदिर की तरफ वापस जाने लगा. लोग अब हल्के स्वर में गा रहे थे. ढोलची भी ढोल हल्का ही बजा रहे थे. मंदिर वापसी के पूरे रास्ते साई स्वार्ड हृदय विदारक स्वर में चिल्लाती रही. मैं कुछ नहीं कर सकता था सिवाय जुलूस के साथ-साथ मंदिर तक जाने के.

जब हम विहार में पहुंचे तो उन लोगों ने पिंजरे को मंदिर के सामने रख दिया और वर्षा की देवी से प्रार्थना करने विहार में चले गये. साई स्वार्ड के लिए कुछ करने का मौका मुझे मिल गया. जब सब लोग भीतर चले गये तो मैंने चुपचाप पिंजरे में से साई स्वार्ड को बाहर निकाला और उसे लेकर घर की तरफ दौड़ पड़ा.

▣

उसी रात को नौ बजे, गहरा अंधेरा छाया हुआ था. साई स्वार्ड अब शांत थी. लगता था दिन की सारी घटना को वह भुला चुकी है. वह मेरे बिस्तर के बीच में घुसकर गहरी नींद सो रही थी. मेरे माता-पिता अभी तक मंदिर से नहीं लौटे थे. वे बाकी सभी लोगों के साथ प्रार्थना करने के लिए अंदर चले गये थे. दिन की पूरी घटना से मैं चकराया हुआ था, पर मैं थक बहुत गया था और पता भी नहीं चला कि मुझे नींद कब आ गयी.

रात के करीब ग्यारह बजे मेरे परिवार के लोग लौट आये. अभी तक वर्षा का कहीं कोई नामोनिशान न था. साई स्वार्ड को देखने के लिए कोई हमारे कमरे में आया भी, पर हमें सोता पाकर चुपचाप वापस लौट गया.

सुबह के तीन बजे होंगे कि एक गड़गड़ाहट सुनायी दी जैसे कोई रेलगाड़ी धड़धड़ाती हुई आ रही हो. फिर पहाड़ों के ऊपर से बिजली की भयानक गड़गड़ाहट सुनायी दी और कुछ ही क्षणों के बाद वर्षा की तेज फुहारें पड़ने लगीं. गांव के सभी लोग बिस्तरों से उछलकर बाहर आ गये. सब खुश थे. किसान अपने खेतों की ओर जाने लगे. तीन दिन और तीन रात लगातार वर्षा होती रही. ऐसा लगता था कि जब तक आकाश की एक-एक बूंद निचुड़ नहीं जायेगी, वर्षा थमेगी ही नहीं. हमारी फसलें बरबाद होने से बच गयी थीं.

पर साई स्वार्ड को इस बारिश से कोई मतलब नहीं था. वह तीन दिन आराम से सोयी रही. बाद में किसान और उनके परिवारों के लोग उसे देखने आते रहे. वे आते, प्यार से उसके रोओं पर हाथ फेरते और उसे खाने के लिए मछली और मांस देते. यही तो उसके प्रिय आहार थे. किसान तो यही सोच रहे थे कि उस साल साई स्वार्ड ने ही उनकी फसलों और परिवारों की रक्षा की थी.

वह सचमुच रानी बन गयी थी. □

गपशप

अल्लामा इक़बाल : दो प्रसंग

कपास के खेत में अरना भैंसा

सर शहाबुद्दीन का रंग बेहद काला था. एक बार वे काला सूट पहनकर असेंबली में आये. अल्लामा इकबाल ने उन्हें देखा तो हंसके फरमाया, "चौधरी साहब! आज तो आप नंगे ही चले आये."

चौधरी साहब ने गौर किया तो मालूम हुआ कि वस्त्रों के चुनाव में उन्होंने सचमुच भूल की है. काले रंग पर काला कोट सचमुच भला नहीं लगता. लोगों को यह जानने में कठिनाई होती है कि कोट का कालर कहां है और ठोढ़ी कहां? यह सोचकर काले सूट की बजाय सफेद सूट पहनना शुरू कर दिया. सफेद पतलून, सफेद कोट, सफेद कमीज, सफेद पगड़ी. चूंकि वे खुद भी पंजाबी के शायर थे, इसलिए सफेद सूट पहनकर समझ लिया कि अब कोई आपत्ति नहीं कर सकता. सफेद लिबास में काला चेहरा इसी तरह मालूम होगा जैसे गोरे गालों पर काला तिल. और माशूक के गाल के तिल की तारीफ में तो शायरों ने दीवान के दीवान लिख मारे हैं. अल्लामा इकबाल ने उन्हें नये रूप में देखा तो सिर से पांव तक एक नजर डाली और अनायास हंस पड़े. चौधरी साहब ने झुंझलाकर पूछा, "आप हंसते क्यों हैं?" अल्लामा इकबाल ने कहा, "मैं देख रहा हूं कि ये आप हैं या कपास के खेत में अरना भैंसा."

सच्चे मुसलमान की पहचान

एक दिन सर शहाबुद्दीन से कहने लगे, "चौधरी साहब! आप सच्चे मुसलमान हैं." चौधरी साहब ने पूछा, "आपको कैसे मालूम हुआ?" कहने लगे, "मुसलमान की पहचान यह है कि वह अंदर और बाहर से एक-सा होता है और खुदा का शुक्र है कि आप भी बाहर और अंदर से बिल्कुल एक-से हैं." □

● प्रस्तुति : राजकुमार गौतम

पखवारे की पुस्तक

राजनीतिक उपन्यास के बहाने

▣ परमानंद श्रीवास्तव

आजादी के बाद के भारतीय सामाजिक ढांचे में राजनीति (वह भी जाति, वर्ग, सत्ता, पूंजी, हिंसा, वोट की राजनीति) का कितना दखल है, समाज कैसे बन रहा है, नये वर्गीय रिश्ते किस तरह बन रहे हैं, भीतर ही भीतर नये गठजोड़ किस तरह कायम हो रहे हैं, धन कहां बढ़ रहा है, ऊंची खर्चीली शिक्षा किसके काम आ रही है और किन्हें फायदा पहुंचा रही है, शोषण के कौन से नये तरीके खोज लिये गये हैं, पूंजीवाद-सामंतवाद से गांधीवाद-समाजवाद, गांधीवाद-समाजवाद से नव-पूंजीवाद और नव-सामंतवाद की ओर किस तरह सामाजिक ढांचा उन्मुख हुआ है—'अग्निबीज' इन कुछ समस्याओं की समझ के साथ लिखा गया एक पठनीय राजनीतिक उपन्यास है.

इस उपन्यास के लेखक मार्कंडेय को प्रेमचंद की परंपरा में देखना अनिवार्य है—यह अलग बात है कि आजादी के बाद की नयी परिस्थितियों ने, रिश्तों के नये अनुभव-ज्ञान ने मार्कंडेय को नयी दृष्टि भी दी है.

अग्निबीज : कौन है?

यों ही नहीं है कि मार्कंडेय इस कथा में एक गांव के तीन-चार तरुणों (श्यामा, सुनीत, मुराद, सागर) को नयी जनचेतना के प्रसार में संलग्न दिखाते हैं. इस नयी सामाजिक चेतना की शिक्षा का केंद्र आश्रम है, जो गांधीवादी मूल्य दृष्टि पर आधारित है. राजनीति से अलग-थलग काम करने वाला यह आश्रम किस तरह राजनीति की गिरफ्त में आता है—इसे एक निश्चित घटनाक्रम के अधीन दिखाया गया है. समय से पहले लक्ष्य कर लिया गया है कि आश्रम की जिंदगी के भीतर ही भीतर राजनीति की एक गुप्तधारा बहती रहती है. आश्रम की जिंदगी के चित्रण से शुरू होने वाला उपन्यास आश्रम में ही घटित आगजनी के चित्र के साथ खत्म होता है—इसके पीछे भी अर्थ होना चाहिए. दूसरे ढंग से देखें तो कहानी श्यामा के साथ शुरू और श्यामा के साथ ही खत्म होती है.

शुरू में ही आश्रम में श्यामा की उपस्थिति एक घटना है. वह साधो काका की लड़की भी है और वाणी भी. साधो काका ने आजादी के लिए जितना संघर्ष किया है, उसकी स्मृति से वह पूरे क्षेत्र के लिए तीर्थ बने हुए हैं. आजादी मिली तो उनके भाई ज्वाला बाबू ने उन्हें पागल बताकर गवर्नमेंटी काम अपने लिए सुरक्षित करा लिया. श्यामा ही अग्निबीज है—परिवर्तन और संघर्ष की चेतना उसके व्यक्तित्व में केंद्रित है. वह जन-प्रतिरोध का नेतृत्व करती है. हिरनी और छबिया को आधार बनाकर स्त्री के शोषण के विरुद्ध आवाज उठाती है. वही श्यामा नितांत परंपरागत ढंग से बगैर जाने-समझे अपात्र के साथ ब्याह दी जाती है और पालकी में गांव क्षेत्र (और कहानी) के बाहर चली जाती है. यथार्थ ऐसा ही है—जाहिर है उसे मार्कंडेय ने अतिरंजना नहीं दी है.

▣ मार्कंडेय

सुनीत ज्वालाबाबू का लड़का है, जिस पर उनका जादू नहीं चला—जो उनके रास्ते पर चला भी नहीं, चला तो श्यामा के दिखाये रास्ते पर. . . "राह उसे दिखायी नहीं पड़ रही थी लेकिन वह चल रहा था."

परिवर्तन की गति तेज करने में, शोषण विरोधी संघर्ष को आगे बढ़ाने में नयी पीढ़ी के दो अन्य सदस्य आगे आते हैं—मुराद और सागर. गरीब मुसलमान और हरिजन वर्ग से आये इन चरित्रों का उपयोग भी उद्देश्य-प्रेरित है. श्यामा मुराद की मानसिक निकटता भी अकारण नहीं है. मुराद बाकर भाई का लड़का है. ब्यौरों में कहा गया है—"मुरली महाराज ने एक हजार नजराना देकर बाकर की जमीन का अपने नाम पट्टा करा लिया था. बाकर अब पूरी तरह भूमिहीन था."

इस्तेमाल की राजनीति. . .

सागर मुसई महतो का लड़का है—मुसई, साधो काका के सहयोगी हैं. चुनावी राजनीति में मुसई को खतरनाक समझकर ज्वालाबाबू उसे गिरफ्तार करा देते हैं, पर यही गिरफ्तारी जन प्रतिरोध को संगठित करने का आधार बनती है. इतना बड़ा जन-प्रतिरोध पहले कभी संभव नहीं हुआ. खास बात यह कि इसमें साधो काका, श्यामा और ज्वालाबाबू का लड़का सुनीत—सब शामिल थे, सब सक्रिय थे. दमन चक्र जिन्हें पूरी तरह सोख चुका था, वे ही अब थाने पर दारोगा की खोपड़ी मांग रहे थे.

छोटी जातियों का उठना ही इस उपन्यास में ज्वालाबाबू जैसों के लिए सबसे बड़ी समस्या है. यहां ज्वालाबाबू के वर्गीय चरित्र को और सफाई से चित्रित किया गया है. वह उस जमींदार वर्ग के प्रतिनिधि हैं,

जिन्हें जमींदारी उन्मूलन कानून ने नजरिया बदलकर बेहद लाभ पहुंचाया था. शोषण की नयी विधियां नये हथियार उनके हाथ में आ गये थे. उन्होंने देश की राजनीति में भी अपनी भूमिका बना ली थी. चुनाव जीतने के सारे हथकंडे वह जानते थे. . .

अगले चुनाव तक वर्ग-संघर्ष और तेज होता है. वर्गीय संबंध ज्यादा पेचीदा हो जाते हैं, ज्वालासिंह का चेहरा और साफ होता है. हरिजनों के विरुद्ध उनकी रणनीति में बिदेसरी पांडे (अर्थात पहले के प्रतिद्वंद्वी) साथ हैं. आश्रम तक को वह इस्तेमाल की राजनीति में शामिल कर लेते हैं. साधो काका के नाम से उनके पक्ष में बयान जारी करा दिया जाता है. आश्रम को चंदा बहू की ओर से मदद आने लगती है, पर दूर तक लाभ जाता है ज्वालासिंह के हित में.

आजाद भारत का चुनाव?

स्थितियां उलझती चली जाती हैं. बाम्हन, ठाकुर, अहीर के वोट पहले से ही बंटे हुए हैं. पर अब यह समझ में आनेवाली बात नहीं है कि हरिजन, यादव, कुर्मी किस तरह बाम्हन के साथ लाल झंडे के नीचे आ जाते हैं. दूसरे प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं कि किसको पोलिंग में नहीं घुसने देना है. . .और कहां कितने जाली वोट डलवाने हैं.

अगिया बैताल सोशलिस्ट है—सभा में हरगोनसिंह कम्यूनिस्ट से सवाल पूछ बैठता है. ज्वालाबाबू अगिया बैताल को अपने ही आदमियों से भुरकुस करा देते हैं और हरगोनसिंह को अभियोग में गिरफ्तार भी—खुद अगिया बैताल को देखने अस्पताल चले जाते हैं. कुर्ते और कंबल बांटे जाने लगते हैं.

यह आजाद भारत के दूसरे चुनाव का प्रसंग है. सुनीत की भूमिका को यहां विशेष रूप से महत्त्व दिया गया है. वह पिता के भी विरुद्ध है और उनके अभिजात वर्गीय हितों के भी.

आश्रम के प्रतिनिधियों द्वारा सरकारी संत विनोबा के भूदान आंदोलन और तेलंगाना संघर्ष पर विनोबावादी सुदेश की टिप्पणी की जो समीक्षा की गयी है, उसके पीछे एक खास राजनीतिक समझ है.

भाईजी स्वदेशी चेतना से लैस समग्र गांधीवादी हैं. भागो बहन गांधीवाद की व्यावहारिक कठिनाइयां भी जानती हैं. पर दोनों विनोबा के रुख के विरुद्ध हैं.

परिवर्तन की समझ या सोच को किसी अभीष्ट दिशा की ओर मोड़ने की कोशिश मार्कंडेय करते हैं, पर प्रचारवादी स्थूल तरीके से नहीं. वह उन मार्क्सवादियों में भी नहीं हैं, जिनको क्रांति एकदम सामने स्पष्ट दिखायी देती है. परिस्थितियों के संघर्ष को चरमस्थिति में लाकर वह छोड़ ही नहीं देते—रुकावटों और अंतर्विरोधों की पहचान भी कराते हैं और राजनीतिक यथार्थ के मानवीय आयामों को भी उद्घाटित करते हैं. गोपी काकी जैसे विलक्षण चरित्र की बुनावट पाठकों को जरूर प्रभावित करेगी.

'अग्निबीज' की कथा बगैर किसी आधुनिकतावादी, शिल्पवादी लटके के कही गयी है. सीधे-सादे ढंग के बयान में भी चरित्र और वातावरण की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पहचान दब नहीं गयी है.

मूल्यों की पक्षधरता अगर रोमांटिक आदर्शवाद है, तो मार्कंडेय ने उससे बचने की कोई कोशिश नहीं की है. एक सामाजिक दस्तावेज को उपन्यास बनाते हुए मार्कंडेय ने दस्तावेज की तीखी प्रामाणिकता और उपन्यास की पठनीयता दोनों की रक्षा की है. एकाध स्थलों पर भावुकता का अतिरेक है, जो नियंत्रण की मांग करता है. इसमें संदेह नहीं कि 'अग्निबीज' हिंदी की अपनी जातीय-धारा का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है. □

●अग्निबीज (उपन्यास)—लेखक : मार्कंडेय. प्रकाशक : नया साहित्य प्रकाशन, 2-डी, मिंटो रोड, इलाहाबाद. प्रथम संस्करण : 1981; मूल्य : तीस रुपये.

संवेतना : समकालीन उर्दू साहित्य की बानगो

▣ अब्दुल बिस्मिल्लाह

वास्तव में, जैसे-जैसे हमारी राजनैतिक, सांस्कृतिक और समाजार्थिक परिस्थितियां बदली हैं, उर्दू साहित्य के व्यवहार में मात्र नाजुक बयानी न रहकर सामयिक परिवेश की तीक्ष्णता भी दिखायी पड़ने लगी है.

उर्दू साहित्य की इस विकासमान स्थिति का एक सुव्यवस्थित संयोजन आवश्यक था, जिसे 'संवेतना' (**सं : महोप सिंह, अतिथि सं : देवेंद्र इस्सर**) ने पूरी जिम्मेदारी के साथ निभाया है.

गजलों और नज्मों का चयन अत्यंत ईमानदारी के साथ हुआ है. इससे उर्दू कविता के बारे में फैली हुई उस विचार-धारा का परिशोधन होगा, जिसके अनुसार उर्दू शायरी का अर्थ केवल बेमानी शायरी से लिया जाता रहा है. **बशीर बद्र, निदा फ़ाज़ली, रौनक नईम, हकीम मंजूर** आदि की गजलों ने कुछ नये रास्ते बनाये हैं.

नयेपन को संभवतः गड़बड़ी में ग्रहण करने के कारण ही उर्दू की आधुनिक कहानियां चौंकाऊ बनकर रह गयी हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि जिंदगी की आम समस्याओं और कहानी के आम मुहावरे से वे पूर्णतया रूबरू नहीं हो सकीं. हालांकि **अहमद हमेश** की **'ड्रेनेज में गिरा हुआ कलम'** तथा **इकबाल मजीद** की **'पोशाक'** कहानियां अपनी प्रयोगधर्मी प्रवृत्तियों के बावजूद आम आदमी के दर्द को बखूबी बयान करती हैं.

देवेंद्र इस्सर के दोनों लेख महत्त्वपूर्ण हैं और **शाहिद माहुली** का लेख भी उर्दू शायरी के बदलते हुए तेवर को विवेचित करने में सफल हुआ है.

कुछ अन्य लेखों की जरूरत भी बार-बार महसूस होती रही, जैसे उर्दू नाटक, आलोचना, व्यंग्य और पत्रकारिता को लेकर भी एकेक लेख होना जरूरी था. उन प्रवृत्तियों पर विचार होना चाहिए था जिनके कारण इनका समुचित विकास नहीं हो सका. □

हलचल

गोरखपुर का रंगमंच

नुक्कड़ नाटकों का सिलसिला

'संचेतना' के तत्वावधान में अब तक लगभग 60 नुक्कड़ नाटकों का नगर में प्रदर्शन हो चुका है. अवाम की समझ को विकसित करने में इन नुक्कड़ नाटकों का योगदान तो है ही, इस दिशा में यह प्रयास विशेष सराहनीय भी है.

अभी पिछले दिनों एक शाम इलाहीबाग मुहल्ले में 'संचेतना' द्वारा दो नुक्कड़ नाटकों **मियां की जूती मियां के सर** और **अब न सहेंगे जोर** का मंचन हुआ.

मियां की जूती मियां के सर अकाल ग्रस्त गांव की कहानी पर आधारित है. (मूल बंगला से निशांत द्वारा अनूदित.) उक्त गांव के लोग भूख और फाके से मर रहे हैं और सारे जिम्मेदार लोग थानेदार, राशन अधिकारी, खाद्यमंत्री आदि के झूठे आश्वासनों में झूल रहे हैं. वे हर दरवाजा खटखटाते हैं. अंत में उनकी समस्याओं को हल करने के लिए गांव में एक सरकारी पंडित नियुक्त किया जाता है. उनकी भूख की समस्या का समाधान करने की बजाय पंडित उन्हें शास्त्रों का पाठ पढ़ाकर भाग्य और फल की भूलभूलैया में भटका देता है. वह उनको सिखाता है—"तुम्हारा काम, काम करना है, फल भगवान पर छोड़ दो." लेकिन नाटक दर्शाता है कि गांव की जनता अब उतनी मासूम नहीं रही—थोड़ा बहुत समझने भी लगी है. वह पंडित को उसी की शास्त्रीय विवेचनाओं से लाजवाब कर देती है. यह नाटक बड़ी बेरहमी से समाज की विसंगतियों का पर्दाफाश करता है.

'संचेतना' की दूसरी प्रस्तुति **अब न सहेंगे जोर** (लेखक: ब्रजमोहन) मुख्य रूप से पात्रों—क्रमशः बेरोजगार, क्लर्क, मजदूर, किसान, छोटे दुकानदार की समस्याओं के बीच झूलती हुई कहानी है. व्यवस्था किस तरह जन साधारण को लूटती-खसोटती है, नाटक में यही समस्या बड़े सशक्त ढंग से गुंफित है. अंत में सभी संत्रस्त लोग एकजुट होकर व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाते हैं. उनकी आवाज को व्यवस्था द्वारा दबाने की चेष्टा की जाती है—लड़ाई होती है. व्यवस्था छिन्न भिन्न होकर लुप्त होती है और उन पांचों पात्रों की सामूहिक जीत हो जाती है.

दोनों नाटकों का निर्देशन डा. लाल बहादुर वर्मा ने किया. सभी पात्रों ने बड़ी कुशलतापूर्वक अपनी भूमिकाएं अदा कीं. जनता को शिक्षित करने के लिए ऐसे नाटकों की जरूरत है और खुशी की बात है कि 'संचेतना' इस पर खास ध्यान दे रही है. □

● **प्रस्तुति : दयानंद पांडेय**

लखनऊ : कविता का मंचन

मूल्यों का ह्रास

अनिल कुमार की लंबी कविता **गारुड़मंत्र** का मंचन उनकी पहली पुण्यतिथि पर लोविस (लखनऊ) द्वारा रेजीडेंसी के ऐतिहासिक प्रांगण में किया गया. आत्मालाप शैली में उपन्यस्त मंत्र कविता के मूलपाठ की एकरसता को निर्देशक अजय शक्ति ने बड़ी खूबी से तोड़ा. खूबसूरत मंच के स्थान पर वॉन् गाग की पेंटिंग्स की पृष्ठभूमि की तरह खुरदरी जमीन पर महज पेट्रोमेक्स और टार्च की रोशनियों के बीच कविता को उसके स्वाभाविक धरातल से जुड़ते हुए देखना एक सुखद चाक्षुष अनुभव था. बीच-बीच में संयत अट्टहासों, अनुगूंजों की ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत स्थितियों का संयोजन निर्देशक ने अभिव्यक्तियों को धारदार बनाने के लिए किया था. साथ ही जगह-जगह पर तांत्रिक बिंबों और प्रतीकों का इस्तेमाल कर निर्देशक ने कविता के मूल कथ्य को पकड़ने का पूरा प्रयत्न किया था. धुंधलके को चीरती हुई टार्च एवं पेट्रोमेक्स की रोशनियां ढेर सारी जगहों पर लोकतंत्रीय यंत्रणा, समकालीन मनुष्य की त्रासदी और समांतर जीवन मूल्यों के ह्रास का आभास देती थीं. (इसी तरह नागपुर में अनिल कुमार स्मृति समारोह मनाया गया, जिसमें वेणुगोपाल, नरेंद्र जैन, माऊ समर्थ, विनायक कराड़े तथा विजय बहादुर सिंह ने भाग लिया. सं.) □

● **प्रस्तुति : ओम निश्चल**

हिंदी पत्रकारिता की लगभग डेढ़ सौ वर्षीय यात्रा में पर्वतीय पत्रकारिता की अपनी ऐतिहासिक भूमिका रही है. पिछले दिनों उत्तर प्रदेश के सूचना एवं जनसंपर्क विभाग द्वारा ठाकुरप्रसाद सिंह के संयोजकत्व में पर्वतीय क्षेत्र के मनीषी पत्रकार पंडित विशंभरदत्त चंदोला की जन्म शताब्दी पर एक समारोह लखनऊ में हुआ, जिसका उद्घाटन शिवानंद नौटियाल ने किया. पर्वतीय पत्रकारिता पर नेत्रसिंह रावत के संयोजकत्व में गोष्ठी भी हुई. चित्र में—नेत्रसिंह रावत तथा ठाकुरप्रसाद सिंह ● **विवरण : सुधीर शाह**

हलचल

गोरखपुर का रंगमंच

नुक्कड़ नाटकों का सिलसिला

'संचेतना' के तत्वावधान में अब तक लगभग 60 नुक्कड़ नाटकों का नगर में प्रदर्शन हो चुका है. अवाम की समझ को विकसित करने में इन नुक्कड़ नाटकों का योगदान तो है ही, इस दिशा में यह प्रयास विशेष सराहनीय भी है.

अभी पिछले दिनों एक शाम इलाहीबाग मुहल्ले में 'संचेतना' द्वारा दो नुक्कड़ नाटकों **मियां की जूती मियां के सर** और **अब न सहेंगे जोर** का मंचन हुआ.

मियां की जूती मियां के सर अकाल ग्रस्त गांव की कहानी पर आधारित है. (मूल बंगला से निशांत द्वारा अनूदित.) उक्त गांव के लोग भूख और फाके से मर रहे हैं और सारे जिम्मेदार लोग थानेदार, राशन अधिकारी, खाद्यमंत्री आदि के झूठे आश्वासनों में झूल रहे हैं. वे हर दरवाजा खटखटाते हैं. अंत में उनकी समस्याओं को हल करने के लिए गांव में एक सरकारी पंडित नियुक्त किया जाता है. उनकी भूख की समस्या का समाधान करने की बजाय पंडित उन्हें शास्त्रों का पाठ पढ़ाकर भाग्य और फल की भूलभूलैया में भटका देता है. वह उनको सिखाता है—"तुम्हारा काम, काम करना है, फल भगवान पर छोड़ दो." लेकिन नाटक दर्शाता है कि गांव की जनता अब उतनी मासूम नहीं रही—थोड़ा बहुत समझने भी लगी है. वह पंडित को उसी की शास्त्रीय विवेचनाओं से लाजवाब कर देती है. यह नाटक बड़ी बेरहमी से समाज की विसंगतियों का पर्दाफाक करता है.

'संचेतना' की दूसरी प्रस्तुति **अब न सहेंगे जोर** (लेखक: ब्रजमोहन) मुख्य रूप से पात्रों—क्रमश: बेरोजगार, क्लर्क, मजदूर, किसान, छोटे दुकानदार की समस्याओं के बीच झूलती हुई कहानी है. व्यवस्था किस तरह जन साधारण को लूटती-खसोटती है, नाटक में यही समस्या बड़े सशक्त ढंग से गुंफित है. अंत में सभी संत्रस्त लोग एकजुट होकर व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाते हैं. उनकी आवाज को व्यवस्था द्वारा दबाने की चेष्टा की जाती है—लड़ाई होती है. व्यवस्था छिन्न भिन्न होकर लुप्त होती है और उन पांचों पात्रों की सामूहिक जीत हो जाती है.

दोनों नाटकों का निर्देशन डा. लाल बहादुर वर्मा ने किया. सभी पात्रों ने बड़ी कुशलतापूर्वक अपनी भूमिकाएं अदा कीं. जनता को शिक्षित करने के लिए ऐसे नाटकों की जरूरत है और खुशी की बात है कि 'संचेतना' इस पर खास ध्यान दे रही है. □

● **प्रस्तुति : दयानंद पांडेय**

लखनऊ : कविता का मंचन

मूल्यों का ह्रास

अनिल कुमार की लंबी कविता **गारुड़मंत्र** का मंचन उनकी पहली पुण्यतिथि पर लोविस (लखनऊ) द्वारा रेजीडेंसी के ऐतिहासिक प्रांगण में किया गया. आत्मालाप शैली में उपन्यस्त मंत्र कविता के मूलपाठ की एकरसता को निर्देशक अजय शक्ति ने बड़ी खूबी से तोड़ा. खूबसूरत मंच के स्थान पर वॉन् गाग की पेंटिंग्स की पृष्ठभूमि की तरह खुरदरी जमीन पर महज पेट्रोमेक्स और टार्च की रोशनियों के बीच कविता को उसके स्वाभाविक धरातल से जुड़ते हुए देखना एक सुखद चाक्षुष अनुभव था. बीच-बीच में संयत अट्टहासों, अनुगूंजों की ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत स्थितियों का संयोजन निर्देशक ने अभिव्यक्तियों को धारदार बनाने के लिए किया था. साथ ही जगह-जगह पर तांत्रिक बिंबों और प्रतीकों का इस्तेमाल कर निर्देशक ने कविता के मूल कथ्य को पकड़ने का पूरा प्रयत्न किया था. धुंधलके को चीरती हुई टार्च एवं पेट्रोमेक्स की रोशनियां ढेर सारी जगहों पर लोकतंत्रीय यंत्रणा, समकालीन मनुष्य की त्रासदी और समांतर जीवन मूल्यों के ह्रास का आभास देती थीं. (इसी तरह नागपुर में अनिल कुमार स्मृति समारोह मनाया गया, जिसमें वेणुगोपाल, नरेंद्र जैन, माऊ समर्थ, विनायक कराड़े तथा विजय बहादुर सिंह ने भाग लिया. सं.) □

● **प्रस्तुति : ओम निश्चल**

हिंदी पत्रकारिता की लगभग डेढ़ सौ वर्षीय यात्रा में पर्वतीय पत्रकारिता की अपनी ऐतिहासिक भूमिका रही है. पिछले दिनों उत्तर प्रदेश के सूचना एवं जनसंपर्क विभाग द्वारा ठाकुरप्रसाद सिंह के संयोजकत्व में पर्वतीय क्षेत्र के मनीषी पत्रकार पंडित विशंभरदत्त चंदोला की जन्म शताब्दी पर एक समारोह लखनऊ में हुआ, जिसका उद्घाटन शिवानंद नौटियाल ने किया. पर्वतीय पत्रकारिता पर नेत्रसिंह रावत के संयोजकत्व में गोष्ठी भी हुई. चित्र में —नेत्रसिंह रावत तथा ठाकुरप्रसाद सिंह

● **विवरण : सुधीर शाह**

अगला अंक

वह कहता है—

यह गिलास तीन हिस्से खाली है!

पर मैं कहता हूं—

यह गिलास एक हिस्सा भरा हुआ है!

मगर जब वह कहता है—

देश की तीन हिस्सा आबादी का पेट खाली है!

तब मैं यह कहकर संतोष नहीं कर पाता कि देश की एक चौथाई आबादी का पेट भरा हुआ है. इस संदर्भ में प्रस्तुत हैं संतोष और असंतोष की विभाजन रेखा के विभिन्न सामाजिक और मानसिक पहलुओं को स्पष्ट करतीं :—

विष्णु प्रभाकर, काजी अब्दुल सत्तार, श्री. दा. पानवलकर, श्याम सुंदर घोष और **कपिल तिवारी** की ताजा कहानियां.

दस्तावेज़

▣ **संपादकों के घेरे में :**

'उसने कहा था'

"क्यों कुड़िए, तेरी कुड़माई (सगाई) हो गयी?"—**'उसने कहा था'**—चंद्रधर शर्मा गुलेरी की यह अमर कहानी 'सरस्वती' (1915) में छपी थी. मगर तब से लेकर अब तक किन-किन संकलनों में छपते-छपाते संपादकगण इसमें क्या-क्या जोड़-तोड़ नहीं करते गये! इसके मूल पाठ पर आधारित तथ्यात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं—**डा. मनोहर लाल.** गुलेरीजी की पुण्यतिथि पर उनकी हस्तलिखित पांडुलिपि तथा उनके आवास आदि के संग्रहणीय चित्रों सहित.

▣ **चलो जापान, चलो जापान!**

घर बैठे, हंसते-हंसाते जापान की मनोरंजक सैर करवाते—**मुज्तबा हुसैन** के दिलचस्प सफरनामे की दूसरी किस्त

▣ **सेंसर की कैंची : भीष्म साहनी**

"बाहर का सेंसर तो जो है सो है, एक सेंसर हमारे अंदर भी बैठा है, और वह भी उतना ही हठी और उद्दंड होता है!"—'जब्तशुदा कहानी विशेषांक-दो' में प्रकाशित परिचर्चा **'अगर मैं सेंसर अधिकारी होता?'** की अगली कड़ी के रूप में प्रख्यात कथाकार का विचारोत्तेजक आलेख.

▣ **साहित्य के सामने राजनीति बहुत बौनी है!**

जाने-माने कथाकार **गिरिराज किशोर** से साहित्य, समाज, संस्कृति और राजनीति के तेवरों के बारे में **प्रियवंद** और **सुमन राजे** की तेज-तर्रार बातचीत.

'सारिका' न पढ़कर आप अपना नुकसान करते हैं

▣ **इतिवृत्त : जगदंबाप्रसाद दीक्षित**

जिन्हें हम जीते-जी सुख नहीं दे पाते, उनकी मौत पर आंसू बहाना क्यों जरूरी हो जाता है?—उपन्यास को एक नया आयाम देती तीसरी किस्त.

▣ **कुंवर की दुलहिन**

लाख पश्चाताप के बावजूद दुलहिन जब फिर मां बनने को हो आयी तब....?—मन, शरीर और परिवार तथा मर्यादाओं के घेरे में स्त्री को परिभाषित करती रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' **की कहानी की समापन किस्त.**

▣ **ग्राम-कथा : गांवों से कटी हुई पीढ़ी का लेखन**

1 अगस्त, 1981 के अंक में कुछ ग्राम-कथाओं का जायजा लेने के बाद पढ़िए, हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ कथाकार **शिवप्रसाद सिंह** की बेलाग टिप्पणी...कि हिंदी में ग्राम-कथा लेखन कितना दूधिया है और कितना पनीला.

तथा सभी स्थायी स्तंभों सहित

सारिका

1 सितंबर, 1981

हर अंक एक जरूरी किताब